हमारे सांस्कृतिक पर्व-त्योहार

डा० माहेश्वरी सिंह 'महेश'
एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन)

पा
पारिजात-प्रकाशन, पटना-१

HAMARE SANSKRITIK PARVA TYOHAR

Dr. Maheswari Singh 'Mahesh'

Price : Forty Rupees.

हमारे सांस्कृतिक पर्व-त्योहार

●

●

संस्करण—पहला : वर्ष १९८२

●

आवरण : हरिप्रकाश त्यागी

●

प्रकाशक : पारिजात प्रकाशन, डाकबंगला रोड, पटना-१

●

मुद्रक : महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी

●

मूल्य : चालीस रुपये

प्रकाशकीय

'पुस्तकें लिखना बहुत आसान है, इसमें केवल कलम और रोशनाई तथा सदा धैर्यवान कागज की आवश्यकता होती है। पुस्तकें छापना इसकी अपेक्षा जरा ज्यादा कठिन काम है, क्योंकि अनन्य प्रतिभाशाली लेखकों को अपठनीय हस्तलिपि में लिखने में विशेष आनन्द आता है। पुस्तकें पढ़ना इससे भी कठिन काम है क्योंकि पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते सो जाने की प्रवृत्ति बहुत आम है। परन्तु नश्वर मानव के लिए जो काम सबसे कठिन है वह है पुस्तक को बेचना।'

जर्मन विद्वान क्लीमन

अनुक्रमणिका

नव वर्ष की प्रतिपदा

पलों से घटिका, घटिकाओं से दिन-रात, दिन-रातों से सप्ताह, सप्ताहों से पक्ष, पक्षों से मास और मासों से वर्ष बनता है। वर्ष की गति सूर्य से चालित है। वर्ष बारह महीनों का होता है। प्रत्येक महीने में दो पक्ष होते हैं—शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष। सृष्टि की आदि बेला से वर्ष-गणना की—संवत्सरारंभ की यही मान्य परम्परा है।

जब प्रकृति प्रांगण में वसन्त ऋतु का शुभागम होता है, जब धरती नवल-शृंगार सजती है और जब कृषि लक्ष्मी का अभ्यागम होता है, नव वर्ष—नवसंवत्सर का शुभागम माना जाता है। वर्षागम की प्रथमा तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा है। इसी तिथि को भगवान ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का शुभारम्भ किया था। इसी तिथि को भारतीय काल-गणना—पंचांग-गणना का प्रारम्भ माना जाता है। अतः यह उचित ही है कि भारतीय नव वर्ष चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से शुरू माना जाय और संवत्सर की नव वर्ष की चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को हमारा संवत्सर नव दिवस हो।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा वर्षारम्भ की नव तिथि कल्याण मंगल सुख-सम्पदा की प्रतीक है। यह प्रतिपदा जिस ग्रह के दिन पड़ेगी, उस वर्ष का राजा वही होगा, जैसे सोमवार को सोम, बृहस्पतिवार को बृहस्पति तथा शनिवार को शनि राजा होगा। वर्ष के सारे सुख-दुःख राजा तथा मन्त्री पर निर्भर है। यथा राजा तथा प्रजा—जैसा राजा होगा वैसी प्रजा होगी। इस प्रकार हमको मालूम होना चाहिए भारतीयों के समस्त कार्य-कलाप नव वर्ष की चैत्र शुक्ला प्रतिपदा पर ही निर्भर है। यही नव दिवस—यही नव तिथि—चैत्र शुक्ला प्रतिपदा हमारे सुख-दुःख तथा वैभव-सम्पदा की सौभाग्यदायिनी संकेत देनेवाली है।

नव दिवस पर्व—पवित्र प्रतिपदा सदा से बड़ी शुद्धता पवित्रता से महिमा गरिमा से, सुख-शान्ति से, भक्ति-भक्ति से तथा विकास-वृद्धि कामना से मनाया जाता रहा है। पर्व मनाने की तैयारी कई दिन पहले से होने लगती है। घर-बाहर की स्वच्छता-सफाई बड़ी तत्परता तथा प्रसन्नता से होने लगती है। लेखा-जोखा किया जाता है तथा विशेष आवश्यक शक्त्यानुकूल आय-व्ययक तैयार किया जाता है। और तदनुकूल व्यय किया जाता है। ठीक प्रतिपदा के दिन घर-बाहर सजे-सजाये जाते हैं। मंगल-कल्पना करने वाले सभी वृद्ध-प्रौढ़, किशोर-बालक—नर-नारी उत्साह-उमंग से कार्यरत हो जाते हैं। इधर कृत्रिम

साज-श्रृंगार सजता है और उधर प्राकृतिक सुन्दर शोभनीय वातावरण का सृजन होता है। और इस प्रकार नव दिवस देवता के नवल अभिनन्दन समारोह का शुभारम्भ होता है।

संवत्सर के नव वर्ष के नव दिवस की प्रतिपदा को भगवान ब्रह्मा की सांगोपांग पूजा का विधान है। भगवान ब्रह्मा की पूजा के साथ कालदेव, समय-देवता की पूजा होती है। इनके साथ-साथ कुल देवता, ग्राम देवता, अन्य देवता, ऋषि, मुनि, देव, पुरुष तथा सर-सरिता, कूप-सागर, पर्वत तथा स्तम्भ की भी पूजा करणीय है। पूजा वन्दनवार सुसज्जित मण्डप में कलश-स्थापन तथा ध्वजारोपण के साथ फूल-पत्र, भोग-नैवेद्य सहित सम्पन्न होता है। पूजा समाप्ति सर्व कल्याण के लिए स्तुतिवन्दना के साथ की जाती है। बाद में प्रसाद-वितरण होता है तथा दान-दक्षिणा दी जाती है। दान में पंचांग तथा जल-पात्र का बड़ा महत्त्व है। यह बड़ा फल और बड़ा पुण्यदायक है।

नव वर्ष दिवस के अवसर पर लोग पिछले वर्ष का लेखा-जोखा भी करते है। पिछले वर्ष के अपने शुभ कार्यों के लिए परमात्मा को धन्यवाद देते हैं तथा अपने-अपने अनुभव कार्यों के लिए पश्चाताप करते हुए उन्ही से क्षमा चाहते है। डायरी रखने और लिखने का आरम्भ इस दिवस से होता है। नव वर्ष मंगलमय हो—आपदायें-विपदायें दूर हों—इसे गौरव-गरिमा, सुख-समृद्धि यश शान्ति प्राप्त हो—एतदर्थ मंगल कामनायें की जाती है।

संवत्सर की इस प्रथमा प्रतिपदा पर्व का उल्लेख बड़ी प्रगतिशीलता के साथ भारतीय वाङ्मय में वेद, ब्राह्मण, पुराण, काव्य और इतिहास से उपलब्ध है। कहा जाता है कि इसी शुभ दिन पर भगवान राम ने भारत को राक्षसों के अत्याचार-अविचार-अन्याय से मुक्त रखने के लिए बालि की हत्या की थी। तब से लेकर आज तक यह दिवस 'स्वतन्त्रता-दिवस' के रूप में—मानव मुक्ति-दिवस के रूप मे मनाया जाता है—मनाया जाना चाहिए। नव दिवस जिन्दाबाद नवतिथि चिरजीवी हो।

अरुन्धती व्रत

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को अरुन्धती व्रत रखा जाता है।

देवी अरुन्धती कर्दम मुनि की पुत्री कपिलदेव मुनि की सहोदरा तथा महर्षि वशिष्ठ की पत्नी हैं। मुनि पत्नियों में इनका स्थान अति विशिष्ट है। देवी

अरुन्धती को सप्तर्षि मंडल नक्षत्रों मे भी स्थान प्राप्त हैं। प्राचीन वाङ्मय में इनकी बार-बार—कई बार याद दिलाई गयी है। ये अखण्ड सौभाग्य देवियों में चर्चित और सम्मानित हैं।

अरुन्धती व्रत चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है और चैत्र शुक्ला तृतीया को समाप्त होता है। इस व्रत को रखने का अधिकार मात्र स्त्रियों को है। अरुन्धती व्रत के करते समय प्रार्थना की जाती है—"मुझे कभी किसी जन्म में वैधव्य दुःख न भुगतना पड़े। मुझे रूप, धन तथा पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति हो। मेरे पति को चिरायु, स्वस्थ और सुख-वैभव प्राप्त हों एवं यावत् चन्द्र दिवाकरो पर्यन्त मेरे सुख-सौन्दर्य कल्याण अखण्डित बने रहें।"

अरुन्धती व्रत प्रतिपदा को प्रारम्भ होता है। उस तिथि को सर, सरिता, कूप या तडाग में स्नान कर संकल्प किया जाता है। दूसरे दिन द्वितीया को धान पर कलश स्थापित कर ध्रुव, अरुन्धती और वशिष्ठ की मूर्तियां स्थापित की जाती हैं। फिर गणेश की पूजा होती है और पूर्ण विधि से अर्चना की जाती है। तीसरे दिन तृतीया को व्रत समाप्ति शिव-पार्वती पूजन के बाद यह प्रार्थना की जाती है—"हे महाभागे! हे अरुन्धती!! हे वशिष्ठप्रियतमे!!! मुझे सौभाग्य दो—मुझे धन दो—पुत्र दो।" अन्त में अरुन्धती व्रत कथा सुनी पढ़ी जाती है, जो इस प्रकार है—"पुराकाल मे एक ब्राह्मण था। उसकी एक सुन्दरी कन्या थी। कन्या बाल-विधवा थी। वह वैधव्य दुःख से मुक्ति के लिए जमुना तट पर घोर तप में लीन हो गई। संयोग से एक दिन उस ओर से शिव-पार्वती निकले। पार्वती जी के उस कन्या के विषय में पूछने पर शिवजी ने बतलाया कि यह कन्या पूर्व जन्म में ब्राह्मण कुमार था। उसने एक कुलशील वाली सवर्णा कन्या से विवाह किया। किन्तु विवाह के ठीक बाद वह परदेश चला गया और उसने एक परस्त्री को अपने घर बैठा लिया और वह अपनी पत्नी को सदा-सदा के लिए भूल गया। ब्राह्मण कुमार को उसी पाप के फलस्वरूप इस जन्म में कन्या रूप धारण करना पड़ा और वह वही वैधव्य दुःख भोग रहा है।'''इतना कहकर शिवजी ने आगे कहा—"जो पुरुष परस्त्री से प्रीति करता है, वह जन्म-जन्मान्तर स्त्री-योनि में जन्म लेकर वैधव्य दुःख भोगता है तथा जो स्त्री पर-पुरुष से प्रीति करती है, वह भी पाप के फलस्वरूप बाल-वैधव्य दुःख भोगती है।"''''अन्त मे शिवजी ने पार्वती के पूछने पर कहा—"जो स्त्री अरुन्धती व्रत करती है, उसे बाल-वैधव्य दुःख भोगना नहीं पड़ता है और बाल-वैधव्य दुःख में पड़ी स्त्री अरुन्धती व्रत रखकर इस दुःख से सदा के लिए मुक्ति पाती है।"

गण गौर

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को गण गौर व्रत समाप्त किया जाता है। इस गण गौरी व्रत भी कहा जाता है। यह भारतीय हिन्दू नारियों का विशेष त्योहार है। राजस्थान मे यह राष्ट्रीय पर्व के रूप में सम्पादित होता है। स्थान भेद से इस पूजनोत्सव में थोड़ा-बहुत भेद पड़ता है, किन्तु मूल आशय सर्वत्र एक ही है।

इस तिथि को भगवान शंकर ने अपनी प्रियतमा पार्वती के बहाने सम्पूर्ण नारी-जगत् को सदा-सदा के लिए सौभाग्यवती रहने का वर दिया था। तब से लेकर आज तक यह व्रत, यह पूजा, यह उत्सव एव यह त्योहार बड़ी श्रद्धा-भक्ति, महिमा-गरिमा तथा आस्था-विश्वास सम्पन्न होता रहा है। इस तिथि को सौभाग्यवती नारियाँ मध्याह्न तक व्रत रखती हैं। फिर बालू की गौरी-प्रतिमा बनाकर उस पर काँच की चूड़ियाँ, महावर, सिन्दूर और नवीन वस्त्र जैसी सौभाग्य सम्बन्धी सभी वस्तुएँ चढाई जाकर चन्दन-अक्षत, धूप-दीप एवं नैवेद्य आदि सुहाग सामग्रियाँ अर्पित की जाती' हैं। कथा कही-सुनी जाती है। और बाद में पूजा वाला सिन्दूर सौभाग्यवती नारियाँ अपनी माँग में लगाती हैं। पूजा मे चढा प्रसाद पुरुषों और बच्चों को नही दिया जाता है।

राजस्थान मे यह व्रत विशेष विधान और रीतियों से सम्पन्न होता है। सच पूछिए तो वहाँ इस व्रत का प्रारम्भ होलिकोत्सव के दिन से ही हो जाता है। वहाँ होली की राख में गोबर मिलाकर गोलियाँ बनाई जाती है तथा कुम्हार के घर से मिट्टी माँग कर लाई जाकर शिव-पार्वती की मूर्तियाँ गढ़कर पूजन किया जाता है। इस प्रकार यह व्रत चैत्र शुक्ला तृतीया को समाप्त किया जाता है।

एक बार भगवान महादेव देवर्षि नारद के संग लोक-भ्रमण के लिए निकले। बहुत मना करने पर भी भगवती पार्वती भी उनके साथ चली। जब वे लोग एक गाँव में पहुँचे तो वहाँ की उच्च नारियाँ साक्षात् शिव-पार्वती को गाँव में पधारते देख बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उनकी पूजा की तैयारी करने लगी। संयोग से उस दिन चैत्र मास की शुक्ला तृतीया थी। इधर उच्च नारियाँ बड़ी-बड़ी तैयारियाँ कर ही रही थी कि उधर निम्न नारियों ने अपनी साधारण पूजा-सामग्री से पार्वतीजी की पूजा समाप्त की। पार्वतीजी ने ऽसन्न होकर सम्पूर्ण सुहाग दे दिया। बाद में जब उच्च नारियाँ अपनी बड़ी तैयारियो के साथ पहुँचीं तो महादेव जी ने पार्वतीजी से पूछा—"देवि! अब इनको क्या दोगी? तुमने तो सम्पूर्ण सुहाग वितरण कर दिया है।" पार्वतीजी बोली—"भगवन्! मैं इन्हें

रक्त सुहाग से सराबोर कर दूंगी।' उन नारियों द्वारा पूजी जाकर पार्वती जी ने अपनी अंगुली चीर कर उससे निकलने वाला रक्त उन नारियों पर छिड़क दिया। फलस्वरूप वे सबकी सब पार्वती जी की तरह ही सौभाग्यवती हो गईं। बाद में पार्वती जी महादेव जी की आज्ञा लेकर महादेव पूजन के लिए पास के सरिता तट पर गईं। वहां उन्होंने सरिता के बालू से ही सारी सामग्रियां तैयार की—बालू की महादेव-प्रतिमा, बालू के पकवान, सब कुछ बालू के। पार्वती जी ने श्रद्धा भक्ति से पूजा की, प्रदक्षिणा की और बालू कण का भोग पाकर महादेव जी के पास लौट आयी।

यहां आने पर महादेव जी ने पार्वती जी से पूछा—"तुमने पूजा में क्या प्रसाद चढ़ाया और स्वयं क्या पाया।" पार्वती जी ने कहा—"मेरी भावजों ने मुझे दूध-भात खिलाया।" यह सुनकर महादेव जी भी दूध-भात खाने के लिए उस ओर चल पड़े। अब तो पार्वती जी बेतरह घबड़ायी। पार्वती जी ने महादेव जी का ध्यान किया और वे प्रार्थना करने लगी—"हे प्रभु! हे नाथ! यदि मैं सचमुच आपकी दासी हू तो आप मेरी रक्षा करें—मेरी लाज बचायें।" और पश्चात् तीनों के तीनों उस स्थान को चले। कुछ ही दूर जाने पर वे एक अन्य नगरी के दिव्य महल में जहां पार्वती जी की नैहर के सभी लोग दीख रहे थे पहुँचे। वहां उन लोगों का बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ। जब तीसरे दिन जाने की तैयारी हुई तो लोगों ने उन्हें और रहने का आग्रह किया। किन्तु पार्वती जी तो वहां से जल्द छुटकारा चाहती थीं। क्योंकि उन्हें सन्देह था कि कहीं उनकी पोल खुल न जाय। अन्ततः लौटने की बात निश्चित हुई और तीनों चल पड़े। कुछ दूर आने पर महादेव जी ने कहा कि उनकी माला तो वहीं छूट गई। माला लाने महादेव जी स्वयं जाना चाहते थे, किन्तु डरी-डरी पार्वती जी ने कहा कि वे ही जायेंगी। इस पर महादेव जी ने ऐसा करने से मना किया। अन्ततोगत्वा नारद जी माला लाने चले जब नारद जी उस स्थान पर पहुँचे तो देखा कि वहां न तो कोई नगर है, न महल और न पार्वती के नैहर का कोई सदस्य। इनकी जगह वहां घोर भयानक जंगल था जिसमें बड़े-बड़े भयंकर जन्तु जानवर विचर रहे थे। नारद जी ने देखा महादेव जी की माला एक तरु शाखा पर विराजमान है। उन्होंने डरते-डरते माला ली और भागकर महादेव-पार्वती जी के पास पहुँचे। जब नारद जी ने उस स्थान की बातें बताईं तो महादेव जी हंस पड़े और बोले—"ये सब पार्वती जी की लीला है—जो अपरम्पार है।" इस पर पार्वती जी विनय पूर्वक बोली—"महाप्रभु! ये सभी आपकी कृपायें हैं" आपके प्रभाव हैं—आपकी माया है—आपकी लीला है। मैं कौन होती, क्या होती, किस योग्य होती।" नारद जी इन दोनों की बातें सुनकर गद्गद् हो गये। उन्होंने

दोनों को विनयावनत हो साष्टांग प्रणाम किया और वे करबद्ध हो बोले—माता। आप पतिव्रताओं में अग्रगण्या हैं—आप अखण्ड अनंत शाश्वत चिरंतन सौभाग्य-शालिनी हैं। आप महादेवी हैं—आदि शक्ति हैं। ये सब आपके पातिव्रत की गौरव गरिमा महिमा है।''

ऋषि-महर्षि-मुनि-महामुनि-पुराणकार-इतिहासकार कहते हैं—''इस पावन-पुनीत-पवित्र पुण्य कथा श्रवण, मनन, चिंतन से विश्व-मानव-समाज में पारस्परिक सद्भाव और विश्वास; परम पुण्य विचार और भावना एवं श्रद्धेय सम्पूर्ण आस्तिकता का वृद्धि विकास सहित उदय होता है।

रामनवमी

रामनवमी भगवान राम का जन्म दिन है। यह तिथि चैत्र मास की शुक्ला नवमी को पड़ती है। चैत्र पद से चान्द्र चैत समझना चाहिये। इसी दिन रामचन्द्र का जन्म हुआ था, अतः यह तिथि रामनवमी कहलाती है। रामनवमी का व्रत सकल पाप-कलुष विनाशक है। इसे सबके सब नर-नारी, बाल-किशोर, युवक, प्रौढ़-वृद्ध तथा राजा-रंक फ़कीर बड़ी मर्यादा और श्रद्धाभक्ति से मनाते हैं।

भारतवर्ष ऋतुओं का देश है। इन ऋतुओं में सर्वोत्तम ऋतु है वसन्त और वर्षा। इन वर्षा और वसन्त ऋतुओं में हमारे दो श्रेष्ठ अवतार कृष्ण और राम ''परित्राणाय साधूना, विनाशाय च दुष्कृतां तथा धर्मसंस्थापनार्थ—युग-युग में अवतरित होते रहे हैं। वसन्त के चैत्र मास में राम और वर्षा के भादों मास में कृष्ण की जन्म तिथियाँ आती हैं।

वसन्त ऋतु में दो मास होते हैं चैत्र और वैशाख। वैशाख मास कुछ अधिक उष्ण होता है किन्तु चैत्र मास में सौरभ और उल्लास भरे-भरे रहते हैं। यही कारण है कि चैत्र को कुसुमाकर कहा गया है। चैत्र मास इसीलिए मधुमास है। ऐसे मोहक मास में ऐसी मोहिनी तिथि को भगवान राम का जन्म होना स्वाभाविक और समुचित है—यह हमें जान लेना चाहिये।

भारतीय जीवन में कृषि का अपूर्व महत्त्व है। भारत देश ही कृषि प्रधान है। कृषि की इस आनन्दमयी ऋतु में फसल कटकर- खेत-खलिहान में आ जाती है। लोग बड़े व्यस्त और अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं। इस समय वसन्त अपनी सकल सुषमाओं के साथ विराजता है। भू के कण-कण में तथा शरीर की नस-नस में

अभिनव जीवन जाग जाते हैं। ऐसी वेला में ऐसे समय में भगवान राम का जो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, अवतरण कितना उत्तम कितना पवित्र और कितना प्रेरक होता है—यह सोचने-विचारने की बात है।

रामनवमी के दिन नाचने, गाने, जागरण करने, भक्तिपूर्वक पुस्तक पाठ करने और रामभक्तों के पूजन करने से राम के लोक की प्राप्ति होती है। जैसे किसान लोग कृषि की वृद्धि के लिए वृष्टि चाहते हैं, वैसे पितर लोग भी रामनवमी का व्रत चाहते हैं। रामनवमी का उपवास करने से सैकड़ों, हजारों और करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं। जो रामनवमी की कथा श्रवण, कथन और संस्मरण करता है वह ऋद्धिमान, बुद्धिमान, धर्मवान, कीर्तिमान और सुखी होता है। सबको सारे कष्ट उठाकर इस व्रत का पालन करना चाहिये। कभी सागर भी सूख जाता है—हिमालय भी क्षीण हो जाता है, परन्तु रामनवमी से प्राप्त पुण्यों का क्षय कदापि नहीं होता। कहा जाता है कि राम से बढ़कर (राम के) नाम का महत्त्व है। राम नाम पाप धोने वाला तथा सीता नाम विपत्ति विनाश करने वाला है। सीताराम के उच्चारण से ही मानव समस्त लोक-परलोक सुखाधिकारी हो जाता है "रा" कहने से मुंह खुलता है। मुंह खुलने के साथ सकल पाप बहिर्गत हो जाते हैं। और "म" कहने से मुंह बन्द होता है और इस प्रकार सभी पुण्य राम कहने वाले का अपना हो जाता है। और सीताराम इसके उच्चारण मात्र से मानव जन्म-जन्मान्तर और कल्पान्तर के लिए उन्हीं का (सीताराम का) हो जाता है।

राम के नाम के साथ सहस्रों कथाएँ लगी हैं। यह भारत का प्रसाद है। इन कथाओं में दो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पहली कथा प्रह्लाद की है। प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप ने उसे रामनाम लेने के कारण मौत के घाट उतारना चाहा। उसे पहाड़ से गिराया, आग में जलाया और वध कर देना चाहा। प्रह्लाद फिर भी रामनाम लेता रहा। अन्त में भगवान का अवतार हुआ। राक्षस मारा गया और प्रह्लाद की रक्षा हुई। दूसरी कथा हनुमान की है। हनुमान सुग्रीव का सेनानायक था और भगवान राम का परम भक्त। उसे रामनाम विहीन कोई वस्तु प्यारी नहीं थी। जब रामेश्वर सेतु बाँधा जा रहा था वह प्रत्येक पत्थर पर रामनाम लिखकर डालता था। लंका विजय के बाद जब सीता जी ने उसे बहुमूल्य मोतियों की माला प्रदान की तो उसने प्रत्येक मोती को तोड़-तोडकर देखा कि उसमें राम नाम लिखा है कि नहीं। और सीता के यह पूछने पर कि उनके हृदय में रामनाम लिखा है कि नहीं उसने छाती फाडकर दिखलाया कि हृदय पर रामनाम अंकित है। रामनाम हमारी जिह्वा पर गूंजता है हम रामनाम रूपी नौका से भवसागर पारकर स्वर्गलोक के अधिकारी बनते हैं। रामनाम के

इस महत्त्व के कारण ही रामकथा–रामायण–रामचरित का यह महत्व है कि वह हमारे जीवन के अंग-अंग में समा गया है।

राम दशरथ के पुत्र थे। दशरथ सूर्यवंशी थे—रघुवंशी थे। उन्होंने अयोध्या पर राज्य किया था। दाशरथी राम के सिवा दो राम और हुए—परशुराम और बलराम। राम विष्णु के अवतार हुए। वे त्रेता के अन्त में हुए थे। महाभारत के वनपर्व में रामकथा संक्षेप में कही गयी है। यही कथा रामायण में महाकाव्य बन गयी है। राम जन्म-कथा बड़ी रहस्यात्मक, प्रेरणात्मक और भक्ति-उत्पादक है। कहा जाता है कि परम प्रतापी चक्रवर्ती राजा दशरथ ने पुत्रेच्छा से अश्वमेध यज्ञ किया। भगवान को यह यज्ञ स्वीकार हुआ। और दशरथ को चार पुत्रों की प्राप्ति का वरदान मिला। उस समय देवता बड़े कष्ट में थे। राक्षस रावण के अत्याचार से ऊबकर भगवान् के यहाँ पहुँचे। उनकी स्तुति की। वे प्रसन्न हुए और दुष्ट-दलन के लिए भगवान् के सातवें अवतार-राम अवतार के लिए तैयार हुए। दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। यज्ञान्त में भगवान् स्वयं पुत्रामृत लेकर वरदान देने के लिए पधारे। फलस्वरूप दशरथ के चार पुत्र रत्न-उनकी तीन रानियों से हुए। ये चारों भाई जिनमें राम सबसे बड़े—सबसे योग्य थे—रघुकुल के मानव कुल के रत्न बने।

रामायण या रामावतार की कथा वाल्मीकि के अमर ग्रंथ रामायण में वर्णित है। यह ग्रन्थ ईस्वी सदी के हजारों वर्ष पूर्व वाल्मीकि द्वारा कही गयी है। रामायण की हस्तलिखित पोथियों में उत्तर दक्षिण-देश-विदेश भाषा-भाषा का बड़ा भेद हो गया है। रामायण दुनिया की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवादित है।

सम्प्रति रामायण के प्रमाणान्तर अध्यात्म रामायण की चर्चा होती है। इसके लेखक व्यासदेव माने जाते हैं। किन्तु कुछ लोग इसे ब्रह्माण्ड पुराण का एक अंश समझते हैं। अध्यात्म रामायण रामायण की तरह सात कांडों में विभाजित है। इनमें राम का अध्यात्म रूप वर्णित है।

रामायण सात कांडों में है। इसमें पचास हजार पंक्तियाँ हैं। बालकाण्ड में राम का बाल चरित्र है। अयोध्याकाण्ड में राम वनगमन है। अरण्यकाण्ड में राम का वन निवास और सीता हरण है। किष्किन्धाकाण्ड में सुग्रीव मिलन है। सुन्दरकाण्ड में राम की लंका यात्रा है। युद्ध काण्डमें राम रावण युद्ध और सीता की प्राप्ति है। राम का अयोध्या आगमन और राम राज्याभिषेक है। और उत्तरकाण्ड में राम का अयोध्या जीवन, सीता-परित्याग, लवकुश का जन्म राम-सीता पुर्नमिलन सीता की मृत्यु और राम का स्वर्गगमन है।

रामायण की रचना बड़ी उदात्त है। उसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। रामायण के प्रारम्भ में ही बतलाया गया है कि रामायण पाठक या श्रोता मुक्ति पाकर उच्चस्थ स्वर्ग को प्राप्त करता है। बाद में ब्रह्मा ने कहा है कि जब तक पृथ्वी पर पर्वत और सरिताएँ हैं तब तक रामायण रहेगी।

रामनवमी भारतीय जीवन का—मानवजीवन का—धार्मिक जीवन का—सामाजिक जीवन का—सांस्कृतिक जीवन का सबसे बड़ा पर्व है। त्योहार है। उस दिन राम अवतार के साथ हम भी नवजीवन में अवतरित हो स्वर्ग की कामना करते हैं।

हनुमज्जयन्ती

चैत्र पूर्णिमा श्री रामभक्त हनुमान का जन्म दिवस है। कुछ लोग यह जन्म दिवस कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को मानते हैं। किन्तु अधिकतर चैत्र पूर्णिमा के ही पक्ष में हैं। हम भी यही मानते हैं।

हनुमान युग प्रसिद्ध रामभक्त और हमारे देश की एक विशेष जाति बन्दर के नेता हैं। वे सदा ही अपने को रामभक्त कहते हैं। उनके लिए संसार में राम के सिवा और कुछ नहीं है। हनुमान जैसा भक्त कोई नहीं हुआ।

हनुमान के पिता पवन हैं और माता अंजना। वे दौड़ सकते हैं—वे उड़ सकते हैं। रामायण में हनुमान का विशेष स्थान है। उन्होंने अपने पूरे दलबल के साथ रावण के विरुद्ध युद्ध में राम का साथ दिया। ये देववंश के हैं और उनमें मानवेतर शक्ति है। हनुमान की महती शक्ति का इसी से अनुमान किया जाना चाहिए कि वे एकबारगी ही भारत से लंका तक कूद गये। वे हिमालय उठा लेते थे, वे मेघों को बाँध लेते थे और उन्होंने महा प्रबला सुरसा का दमन किया था। वे कपीश हैं। वे अतुलित बलधाम हैं। महावीर हैं, विक्रम हैं, बजरंगी हैं, कुमति के विनाशक और सुमति के संगी हैं। वे कुण्डलयुक्त हैं, उनके कुंचितकेश हैं। वे पर्वत की तरह हैं। उनका रंग पिघलते सुवर्ण की तरह। उनके हाथ में वज्र और ध्वजा है, काँधे पर जनेऊ। वे शंकर के सुत समझे जाते हैं, वे केशरी नन्दन हैं। वे बड़े वीर हैं, बड़े पण्डित हैं। उनकी बड़ी लम्बी पूँछ है—इतनी लम्बी और इतनी भारी कि महाबलशाली भीम भी उसे नहीं उठा सकते थे। वे बादल की तरह चलते हैं—वे सागर की तरह गरजते हैं। एक बार रावण ने

उनकी पूँछ का हल्का सा अपमान किया फलस्वरूप उन्होंने सारी लंका को खोर-खोर जला दिया था। इसी से उन्हें लंकादाही कहते हैं।

हनुमान राम-भक्त हैं, राम-दूत हैं और राम के सेनानायक हैं। रामादेश से वे लक्ष्मण के लिए हिमालय गये। उन्होंने कालनेमि का नाश किया। उन्होंने लक्ष्मण को जीवन दान किया।

लंका विजय के बाद हनुमान राम और सीता के साथ अयोध्या आये। वहाँ उनका अनुपम स्वागत सत्कार हुआ। भगवान् राम ने उन्हें भरत जैसा बन्धु घोषित किया और उन्हें शाश्वत जीवन और चिरंतन यौवन का वरदान दिया।

हनुमान की विविध कथाएँ हमारे साहित्य में भरी पड़ी हैं। वे आनिलि हैं, मारुति हैं, आजनेय हैं। वे योगी हैं, ब्रह्मचारी हैं एवं रजतद्युति हैं। ज्ञान-विज्ञान में वे अनुपम हैं, कला कौशल में बेजोड़ हैं, और वे बड़े शास्त्रज्ञ और बड़े महान् वैयाकरण हैं। कहा जाता है कि हनुमान नाटक के रचयिता हनुमान स्वयं हैं। रामभक्त हनुमान राम के ही अवतार माने गये हैं।

हनुमज्जयन्ती श्री रामनवमी की तरह ही विधि पूर्वक आदर और गरिमा के साथ सम्पादित होती है। व्रत रखा जाता है, उपवास किया जाता है और पंचामृत स्नानादि होता है। तेल सिन्दूर से शृंगार होता है एवं नैवेद्य चढ़ता है। नैवेद्य में भुने या भीगे चने, गुड़ और बेसन के लड्डू, मोतीचूर के लड्डू अथवा रोटका महत्त्व है। हनुमान को यह शृंगार और यह नैवेद्य अत्यधिक पसन्द है। तेल-सिन्दूर तो उनके स्वरूप के अनुकूल है। यह विशेष नैवेद्य उनका सारे वानर वृन्द का अत्यन्त प्यारा है। यों भी चना शीतल, रूखा, रक्तपित्त और कफनाशक और वायुवर्द्धक तथा भीगा चना कोमल रुचिवर्द्धक पित्त और शुक्र को मिटाने वाला है। इसी प्रकार गुड़ के अपार गुण हैं। वह शक्तिदायक है, वायुनाशक है और रक्तशोधक है। चना और गुड़ का संयोग बड़ा लाभ प्रद होता है। हनुमान इसे पाकर बड़े प्रसन्न होते हैं।

हनुमान जयन्ती के दिन उपवास, जागरण पंचामृत स्नान और प्रतिमार्चन और हवन का बड़ा महत्त्व और भारी पुण्य है। दूध, दही, घी, मधु और शर्करा का यह पंचामृत उपवास के दिन प्राशन करने के लिए रखकर ऋषियों ने बड़ा उपकार किया है। प्रतिमार्चन और हवन एक प्रकार का यज्ञ है। यह यज्ञ इष्ट कामना को पूर्ण करने वाला है। इससे नित नवीनता आती है और सदा कल्याण होता है। मनोरथ पूर्ण होते हैं और आध्यात्मिक विकास होता है। इसी प्रकार हवन भी मनोरथ पूर्ण करने वाला तथा दान सकल पुण्य दाता है। इस अवसर पर उपवास करने वाला जन्म-जन्मान्तर के पापों को भस्मकर परम पद को प्राप्त

करता है। सकल प्राणी उसकी पूजा अर्चना करते हैं और वह राम भक्त हनुमान की तरह ही नही स्वयं भगवान् राम की तरह हो जाता है।

हनुमज्जयंती का व्रत अन्य सकल व्रतो के करने का फल देने वाला है। सब व्रतों की सिद्धि इसी एक व्रत से हो जाती है कहा गया है कि सब व्रतों की सिद्धि के लिए हनुमज्जयन्ती का व्रत करना चाहिए। इस व्रत से सब गुप्त किंवा प्रकट पाप विनष्ट हो जाते है। इसके एक उपवास से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। आगे बताया गया है कार्तिक पूर्णिमा में स्कंद यात्रा से जो फल मिलता है। वह इससे होता है। जो फल कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, द्वारका और प्रयाग की यात्रा से होता है वही फल इस व्रत से होता है। करोड़ों सूर्य ग्रहण मे करोड़ो बार स्वर्णदान का फल इससे सुलभ है। काशी, प्रयाग, मथुरा, रामेश्वर तथा द्वादश ज्योतिर्लिंगो की यात्रा का फल इससे सहज में ही मिल जाता है। सागर भले ही सूख जाय, हिमालय भले ही ढह जाय किन्तु इस व्रत का फल अक्षय रहता है।

अक्षय तृतीया

वैशाख मास की शुक्ला तृतीया अक्षय तृतीया है। यह अत्यन्त महिमामयी एव परम सौभाग्यदायिनी है। यह अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है। सतयुग का आरम्भ इसी तिथि से माना जाता है तथा भगवान् परशुराम का जो भगवान् के दश अवतारों में है अवतार इसी तिथि को हुआ था। इस तिथि की पूज्यता, पुण्यता, पवित्रता एवं धार्मिकता का यशोगान करते हुए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण नही थकते कभी नहीं अघाते। इन्ही भगवान् श्रीकृष्ण के शब्दों में यह वैशाख शुक्ला तृतीया तिथि महती पुण्यदायिनी एवं धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से गौरवशालिनी, पापमोचिनी और स्वर्ग-प्रदायिनी है।

इस तिथि को गगा स्नान तथा पितृ तर्पण का बड़ा महात्म और महत्व है। इस तिथि पर पूर्वाह्न में स्नान, जप, तप, होम, स्वाध्याय एवं पितृतर्पण और पिण्डदान करणीय है। इस तिथि को स्नानोपरांत लक्ष्मी नारायण के दर्शन एक विशेषता रखते है। स्नान-दर्शन के बाद कुम्भ, विजन, सत्तू, शक्कर, चावल, लवण, स्वर्ण, वस्त्र, पादुका, इत्र, ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा, लड्डू तथा दही का दान परमश्लाघनीय है। यह तिथि देव-पितर दोनों ही के प्रतिकार के कार्य के लिए सुरक्षित है। अक्षय तृतीया युगादि तृतीया, परशुराम-जयन्ती तथा ५९०.०

तीज की संज्ञा से भी जानी जाती है। पुराण कहता है कि इस तिथि के माहात्म्य के श्रवण के बाद अन्य कोई माहात्म्य श्रवण की आवश्यकता नही रह जाती है।

पुण्या-पूज्या एवं पापनाशिनी अक्षय तृतीया के सम्बन्ध में भविष्य पुराण में एक दिव्य, भव्य, रोमांचक एव मनोरंजक कथा आती है। कथाकार हैं, भगवान् श्रीकृष्ण एवं श्रोता हैं महाराज युधिष्ठिर। कथा इस प्रकार है :—पुराकाल में एक वैश्य था। उसका नाम था महोदय। वह अत्यन्त गरीब था। किन्तु था बडा आस्तिक, भगवान्-प्रेमी, गौ ब्राह्मण का पूजक, महाभद्र अति सज्जन, सत्यवादी, व्रतसेवी एवं परम श्रद्धालु। वह अपनी घोर गरीबी के कारण आये दिन बडा चिन्तित, बडा व्याकुल एवं बडा खिन्न रहता था। दुःख चिन्ता तथा कष्ट के इन दिनों मे उसने अक्षय तृतीया माहात्म्य में सुना कि इस तिथि में दान-जप-हवन तथा स्नानादि से महाफल की प्राप्ति होती है। माहात्म्य श्रवण से प्रेरित महोदय महाशय ने एक बार अक्षय तृतीया की शुभ तिथि पर गंगा स्नान किया तथा देव पितरों की पूजा अर्चना कर घट, पंखा, छाता, खड़ाऊँ, चावल, नून, सत्तू, गुड, गव्य तथा कई प्रकार के फल श्रद्धा भक्ति सहित दान किये। कालान्तर में अत्यन्त वृद्ध हो जाने के बाद भी नाना प्रकार की आधि-व्याधि से ग्रसित होने पर भी वह धर्म कर्म से, पूजा-भक्ति से तथा व्रत-कथा से आजीवन पराङ्मुख नही हुआ। समय पूरा होने पर वह सन्तुष्ट, प्रसन्न हो निश्चिन्त हो मृत्यु को प्राप्त हुआ।

वैश्य महोदय ने अपने दूसरे जन्म में एक क्षत्रिय कुल में जन्म धारण किया। अपने पूर्व सचित पुण्य के फलस्वरूप वह बड़ा प्रतापी, बड़ा सम्पन्न तथा बड़ा यशस्वी हुआ। उसके पूर्वजन्म के भाग्य, संस्कार तथा पुण्य जागे। धर्म, कर्म तथा भगवद्भक्ति में उसकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढती गई। यह जितना जो कुछ हुआ वह इसी अक्षय तृतीया का पुण्य फल था। इसी पुण्य फल के कारण इस जन्म मे इसके प्रताप, ऐश्वर्य तथा भक्ति-धर्म की कथायें सारे लोक में फैली। वह आजीवन दयालु, श्रद्धालु, दानी तथा धर्म-कर्त्तव्य-परायण बना रहा।

इस तिथि पर उपर्युक्त कथा के अलावा परशुराम के उपाख्यान सुनने का भी विधान है।

नृसिंह चतुर्दशी

जब-जब धर्म की हानि होती है, जब-जब आततायियों का अत्याचार बढ़ता है, जब-जब दुष्ट सज्जनों को परेशान करते हैं, जब-जब सुर-असुरों द्वारा घोर नारकीय यातनायें भोगते हैं और जब-जब अविचार, कदाचार, व्यभिचार, दुराचार एवं अनाचार अपनी चरम सीमा पर पहुँचते हैं, तब-तब भगवान् अपने विविध रूपों में लोक-कल्याण, जन-कल्याण एवं विश्व-कल्याण के लिए इस धराधाम पर अवतरित होते हैं। भगवान के ऐसे अवतार विभिन्न युगों के विभिन्न अवसरों पर देखे गये हैं। भारतीय वाङ्मय इन अवतारों की नाना प्रकार की कथाओं से भरा-पूरा है। भगवान का ऐसा ही अवतार वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को हुआ था। यह पुण्य पवित्र तिथि-यह अवतार तिथि नृसिंह चतुर्दशी के नाम से विख्यात है। इस पावन तिथि को भगवान विष्णु ने नरसिंहावतार धारण किया था। इस नरसिंहावतार की बड़ी भव्य दिव्य अनुपम कथा निम्न प्रकार है—

सतयुग में हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दो प्रचंड पराक्रमी असुर कश्यप-दिति के पुत्र थे। इन दोनों घोर अत्याचारियों ने निखिल विश्व को आतंकित कर रखा था। भगवान विष्णु ने नियमानुकूल वाराह अवतार धारण कर हिरण्याक्ष का सफाया कर दिया। इससे हिरण्यकशिपु ने अत्यंत क्रोधित हो सारे विश्व से बदला लेना ठाना। उसने ब्रह्मा और शिव की घोर तपस्या कर वरदान प्राप्त कर ऐसी शक्ति पाई कि वह मदान्ध हो स्वयं को भगवान कहने लगा। उसने अत्याचार अनाचार तथा व्यभिचार की सीमा बढ़ा दी। उसने अपनी कठोर आज्ञा जारी कर भगवद् भक्तों को जीना दूभर कर दिया। धार्मिक कृत्य रुक गये। घोर हाहाकार मच गया। सब त्राहि-त्राहि करने लगे।

चढाया, पर्वत शिखर से भूमि पर पटकवाया, हाथी के पैरो तले डलवाया एव विषमिश्रित भोजन करवाया। हिरण्यकशिपु ने संक्षेप में यही कहना होगा कि अपने पुत्र की, जिसे वह अपना शत्रु समझने लगा था, मौत के लिए कोई सरल कठोर उपाय न छोड़े। किंतु सब व्यर्थ बालक प्रह्लाद का बाल बाका न हुआ। वह प्रत्येक यातना के बाद-हर परीक्षा के बाद सच्चे सोने की तरह प्रमाणित हुआ।

अन्तत: हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को आग में जलाकर भस्म कर देने की योजना बनाई। उसकी एक बहन थी होलिका। वह बड़ी क्रूर था। उसके पासी एक वस्त्र था जिसकी विशेषता यह थी कि उसे पहन कर वह आग में कूद पड़ती थी और फिर जीवित निकल भागती थी।

दोनों भाई बहन ने षड्यन्त्र किया कि होलिका अपना जादुई वस्त्र धारण कर बालक प्रह्लाद को गोद में लेकर प्रचण्ड अग्नि मे प्रवेश कर जायगी एवं होलिका अपनी वस्त्र-शक्ति से साबित निकल आयगी तथा प्रह्लाद जल मरेगा। यही किया गया। किन्तु आश्चर्य, होलिका तो जलमरी और प्रह्लाद भगवान भगवान करता हुआ दिव्य मुख मंडल सहित निकल आये। हिरण्यकशिपु यह अलौकिक दृश्य देखकर हतप्रभ हो गया और उसने अपनी कठोर विकराल तलवार से प्रह्लाद का अंत करने का निश्चय किया। उसने अपने भरे-पूरे दरबार में एक स्तंभ में मोट पतली रस्सी से खूब कस कर प्रह्लाद को बंधवा दिया। उसने अपनी भीषण तलवार दिखा कर प्रह्लाद से पूछा—'बतलाओ, तुम्हारा भगवान् कहां है ?' प्रह्लाद मुस्कराया और बडी नम्रता से बोला—पिताजी, भगवान तो सर्वत्र है—हममें-तुम मे-खड्ग-खंभ मे।'' राजा इस उत्तर को सुनकर तिलमिला उठा। वह क्रोधावेश में अपने में नहीं रह सका। उसने उछलकर-हुमचकर खंभे पर जोरों से लात लगाई। खंभा फट गया और उससे एक महा भयकर मूर्ति निकल पड़ी। उस मूर्ति का धड़ मानव जैसा था, किंतु उसका मुख मंडल भयंकर क्रोधांध सिंह जैसा। उस मूर्ति ने—नरसिंह ने निकलते ही हिरण्यकशिपु को उठा कर पटका और अपने विकराल नखों से उसका पेट फाड़ डाला। और हिरण्यकशिपु सदा-सदा के लिए समाप्त हो गया।

इस अलौकिक घटना पर अत्याचारी-दुराचारी पापाचारी हिरण्यकशिपु के विनाश पर तीनों लोक जय-जयकार कर उठे। देव-गधर्व-किन्नर ने पुष्पवृष्टि की और आकाश तथा मेदिनी के जीव स्वर्ग संगीत गाने लगे। अखिल निखिल विश्व महान् सुख शाति का साम्राज्य छा गया। और हाँ, उसी दिन उसी क्षण भगवान् विष्णु ने अपने भक्त प्रह्लाद को देव पद तथा दैत्यराज का सिंहासन दिया।

पुराणों में नृसिंह चतुर्दशी व्रत का बड़ा उदात्त वर्णन मिलता है। कहा गया है कि इस महान् व्रत का पालन बड़ा सरल है। इस व्रत का पालन कोई भी योग्य अधिकारी कर सकता है। व्रत रखने वाला निराहार रहता हुआ दुपहर में वेद

मंत्रोच्चारण के साथ शुद्ध पवित्र वस्त्र धारण कर भूमि को गोबर से लीप कर पवित्र कर भगवान् नरसिंह का स्मरण करता हुआ पूजा पर बैठता है। उसके सामने अष्टदल कमल पर कलश विराजता हैं जिसमें ताम्बा एवं रत्न डाले रहते हैं। कलश पर एक पात्र रखा जाता है जो अक्षत से भरा रहता हैं। उस पर भगवान नरसिंह की मूर्ति-धातु-मूर्ति पंचामृत से स्नान कराकर रखी जाती है। पूजा में भगवान का यशोगान होता है और भक्त प्रह्लाद की भक्ति गाथा कही सुनी जाती है। भगवान की इस पूजा में भूमि गो, तिल, वस्त्र, शय्या तथा स्वर्ण दान का विधान है। पूजात में नरसिंह भगवान की जय तथा भक्त प्रह्लाद की जय के नारे लगाये जाते हैं, आरती उतारी जाती हैं, फलाहार किया जाता है एव प्रसाद बाँटा जाता है। इस व्रत के पालन से मनुष्य स्वास्थ्य लाभ करता है धर्म परायण बनता है सपरिवार विश्व सुख भोग करता है एवं जीवनोपरात बैकुण्ठवास का अधिकारी होता हैं।

वट सावित्री

ज्येष्ठ मास की अमावस्या को (उत्तर भारत में) तथा ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को (दक्षिण भारत) में वट सावित्री व्रत पालन किया जाता है। उस दिन मध्याह्न के बाद सर-सरिता-सागर-निर्झर-कूप स्नान के बाद वटवृक्ष के मूल को शुद्ध पवित्र जल से सिंचित कर प्रार्थना की जाती है :—'मैं नामधारी जिसका गोत्र हूं आपकी सेवा-चरण में उपस्थित हो अपने पति-पुत्र के आरोग्य की कामना करती हूं। मैं यह भी कामना करती हूं कि मैं जन्म-जन्मान्तर तक सधवा बनी वट सावित्री व्रत में लीन आपकी सेवा-सुश्रुषा-पूजा-अर्चना करती रहूं। हे वट वृक्ष! आपके मूल में ब्रह्मा, अग्रभाग में शिव तथा सर्वाङ्ग मे सावित्री का निवास है। मैं आपका सिंचन करती हूं। आप मुझ पर कृपा करें मेरे पति पर कृपा करें—मेरे पुत्र पर कृपा करें—आप मुझे वर दें आप मुझे आशीर्वाद दें।"

उपर्युक्त पूजा-प्रार्थना के बाद कच्ची हल्दी में रंगे सूत के डोरे से वट को बाँधकर पुष्प और अक्षत से उसकी पूजाकर वट और सावित्री को नमस्कार करते हुए प्रदक्षिणा करें। फिर घर आकर हल्दी और चन्दन से घर की भीत पर वट वृक्ष अंकित करें और उसके सामने यथा शक्ति स्वर्ण किंवा मृत्तिका की मूर्ति बनावें और भक्ति पूर्वक पूजन कर प्रार्थना करें—हे देवि! हे देवि! मेरा व्रत

निर्विघ्न समाप्त हो। फिर पूजा अर्चना के बाद सौभाग्यवती पुत्रवती स्त्री को सिन्दूर, कुमकुम तथा पान आदि से पूजा करनी चाहिए। पूजा समाप्ति कर सत्पात्रों को स्वर्ण प्रतिमा सहित नये बास से बनी डाली में फूल वस्त्र तथा सौभाग्य द्रव्य दान का विधान हो।

वट सावित्री व्रत के शुभ अवसर पर निम्नलिखित वट सावित्री कथा पठनीय तथा श्रवणीय है—

"भद्र देश के अति धार्मिक तथा परमज्ञानी राजा थे अश्वपति। उन्हें कोई संतान न थी। फलस्वरूप राजा रानी सदा शोक मग्न रहते थे।

राजा-रानी ने विद्वानों-पंडितों की प्रेरणा से सरस्वती को प्रसन्न कर यह वर पाया कि राजा-रानी को एक दोनों कुल की कीर्ति पताका को ऊँचा उठाने वाली कन्यारत्न की प्राप्ति होगी। उसका नाम रखना सावित्री।

समय पाकर सरस्वती का वरदान पूरा हुआ। कन्या का जन्म हुआ। उसकी छवि चन्द्रकला के समान थी। वह चन्द्रकला के समान ही बढ़ती हुई विवाह के योग्य हुई।

राजा सावित्री के लिए योग्य वर ढूँढने में असमर्थ हुए। अतः उन्होंने यह भार कन्या सावित्री पर ही छोड़ा। सावित्री पिता की आज्ञा से अपने लिए योग्य वर ढूँढने निकली।

एक दिन नारद जी घूमते-घामते राजा अश्वपति के पास पहुँचे। राजा और नारद जी सावित्री के विवाह के सम्बन्ध मे बात कर ही रहे थे कि सावित्री आ पहुँची। नारद जी पूछ बैठे—"बेटी क्या तुमने अपने लिए कोई वर ठीक किया?" सावित्री लजाती हुई बोली,—"हाँ, मैंने राजा द्युमतसेन के सुपुत्र सत्यवान को वरण किया है।" नारद जी जरा रुक कर बोले—"महाराज, बेटी सावित्री ने ठीक वर चुना है। सत्यवान परम धार्मिक, सत्यवादी और परोपकारी तथा परम गुणी और धर्मात्मा है। वह सब तरह से सावित्री के योग्य है। किन्तु"....

'किन्तु' सुनकर राजा चौंके और विनय पूर्वक बोले—'यह किन्तु क्या देवर्षि!'....नारद जी बोले—"सत्यवान अल्पायु है। वर्ष भर में ही उसका देहावसान हो जायगा।" राजा घबरा उठे और बोले—'तो क्या बेटी सावित्री वर्ष भर के भीतर विधवा हो जायगी।' राजा-रानी आश्चर्यपूर्ण नयनों से नारद जी को देखने लगे। फिर सावित्री को कहा—"देवर्षि की वाणी झूठ नहीं हो सकती है। अतः तुम कोई दूसरा योग्य वर वरण करो। हमारे रहते क्षीणायु वर से विवाह नहीं हो सकता।

सावित्री ने कहा—"पिताजी, माता जी, परम पूज्य देवर्षि जी, मैं सत्यवान को अपना पति मान चुकी हूँ। अब उन्हे छोड़ने की बात नहीं हो सकती—वे ही मेरे पति है। मैं साक्षात् इन्द्र को भी अब स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हूँ।" सावित्री की दृढ़वाणी से राजा-रानी दोनों ही हाहाकार कर उठे। सर्वत्र शोकसमुद्र उमड पडा। पर सावित्री की अडिगता देख किसी में और बात करने का कोई साहस नही हुआ। नारद जी ने राजा-रानी को धैर्य दिया और कहा राज विधि का विधान कोई नही टाल सकता। किन्तु सावित्री भाग्यशाली कन्या है उसका आग्रह, विधि के विधान अन्यथा नही कर सकता है। आप अन्यथा न सोचें-सत्यवान के साथ सावित्री का विवाह कर दें।

"नारद जी की अनुमति और सहमति से जब राजा अश्वपति ने जंगलवासी राज्यभ्रष्ट राजा द्युमत सेन को यह विवाह सन्देश भेजा तो वे आश्चर्य में डूब गये। लेकिन उन्हें राजा अश्वपति का सन्देश स्वीकारना पड़ा। जंगल में ही दोनों का विवाह हुआ। और राजा अश्वपति सत्यवान और सावित्री को अपने सास-ससुर के साथ जंगल में ही छोड़ अपनी राजधानी आ गये।"

देवी सावित्री अपने घर, जंगल में सुखपूर्वक रहती थी। किन्तु देवर्षि नारद की भविष्यवाणी की याद आने पर शोकाकुल-चिन्ताकुल हो जाती थी। वर्षान्त निकट आ रहा था। उसकी प्रसन्नता बढ रही थी। वह सास-ससुर स्वामी में रत हो भगवान की प्रार्थना करती रही। आखिरकार वह अशुभ दिन आया, जो कि सत्यवान का मृत्यु दिन था। उस दिन उसने प्रातःकाल उठकर सास-ससुर की पूजा की और ईश्वराधना करने लगी।

उस दिन सदा की तरह जब सत्यवान लकडी काटने जंगल चला तो सावित्री सास-ससुर के पास पहुँची और बोली—"पिताजी, माताजी, आज मुझे यहाँ रहते करीब एक वर्ष हो गया। मैं अभी तक जंगल में घूमी नही। आज मैं अपने स्वामी के साथ उस ओर जहाँ वे रोज लकड़ी काटने जाते है जाना चाहती हूँ।" सत्यवान बोला—"तुम मेरे साथ चलती हो तो यहाँ माता-पिता की सेवा कौन करेगा?" सावित्री ने कहा—"देव, आज के लिए मैं क्षमा माँग लूँगी किन्तु आपके साथ चलूँगी अवश्य।"

सावित्री ने सास-ससुर की आज्ञा प्राप्त की और सत्यवान के पीछे-पीछे चली। रास्ते में डरती चल रही थी। जंगल बीच पहुँच कर सत्यवान ने फल तोड़े, पुष्प चयन किये तथा मंजरियाँ जमा की। फिर वह कुल्हाड़ी लेकर एक पेड़ पर चढा और एक डाल काटने लगा। अकस्मात् उसने जानलेवा दर्द का माथे में अनुभव किया। कुल्हाडी हाथ से छूट कर जमीन पर आ गिरी और वह किसी-किसी तरह पेड़ से उतरा। सावित्री समझ गई—मृत्यु आ रही है। वह

विह्वलता से सत्यवान की ओर ताक रही थी कि उसने देखा कि दक्षिण ओर से विकराल आकृति वाले के साथ स्वयं यमराज आ रहे हैं।

सावित्री यमराज के आने ही न मालूम क्यों निर्भय हो उठी। उसकी निराशा दूर हो गई। उसकी हृदय में आशा की एक किरण जागी। उसे विश्वास होने लगा कि उससे उसके पति को छीन लेने की शक्ति यमराज में नहीं है।

यमराज ने आते ही अपने दूतों से कहा—"लो, सत्यवान का प्राण हरण करो। दूत आगे बढ़े। किन्तु यह क्या? तेजस्विता, करुणा और ममता की पवित्रता मूर्ति सावित्री के मुखमण्डल को देख उन्होंने अपना साहस खो दिया और विवश कुंठित वे अपने स्वामी यमराज की ओर ताकने लगे। यमराज आगे आये और सावित्री से बोले—"सावित्री ईश्वर के कठोर नियमों की अवहेलना की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं सारी बातें समझ रहा हूँ। किन्तु लाचारी है। मेरा नाम यमराज इसीलिए है कि मैं ईश्वर के नियमों का कठोरता से पालन करूँ।"

सावित्री की तेज और करुणा भरी आँखें एकटक यमराज की ओर देखती रही। यमराज में यह ताकत न रही कि वे ज्यादा देर उस ओर देख सकें। उन्होंने अपनी आँखें नीची कर ली, मृत्यु पाश को अपने कंधों पर रखा और सत्यवान के शरीर से उसके प्राणों को खींचकर जिधर से आये थे उसी ओर चल पड़े। सत्यवान का निर्जीव शरीर सावित्री की गोद में लुढ़क गया। फिर क्या था, सावित्री अपने अखंडित तप तथा तेज से आकाश मार्ग में यमराज के पीछे-पीछे चली। बहुत दूर जाने पर यमराज रुके और सावित्री से बोले—"पति-व्रते! जहाँ तक अपने प्रियजन का साथ कोई दे सकता है, तुम वहाँ से भी आगे आ गई हो। अब तुम लौट जाओ। आगे बढ़ना मनुष्य के कर्तव्य से परे है। अतः मेरी सम्मति है अब आगे मत बढ़ो।"

सावित्री बोली—भगवन्! पतिव्रता का काम है कि अपने प्यारे पूज्य पति का संग न छोड़े। अब तो जहाँ भी मेरे पति जायेंगे मैं चलूँगी, साथ रहूँगी। मैं अपने पतिव्रत धर्म से विचलित नहीं हो सकती हूँ। देव! अब रही मनुष्य के कर्तव्य के आगे जाने की। इसके विषय में मैं मात्र इतना कहना चाहती हूँ कि पतिव्रत धर्म के प्रभाव तथा आपकी कृपा से मेरी गति रोकने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। मैं अपने प्राण प्रिय पति के साथ आपके साथ स्वर्ग तथा अपवर्ग तक अनुगमन कर सकती हूँ—करूँगी।

सावित्री के निश्चय को सुन यमराज बोले—पतिपरायणे! मैं तुम्हारी पति भक्ति से प्रभावित हूँ। मैं यह स्वीकारता हूँ कि तुम्हारे समान पति परायणा त्रिलोक में और कोई नहीं है। मैं तुमसे प्रभावित हूँ। अतः तुम सत्यवान के प्राण छोड़कर जो चाहो वर माँग लो।" सावित्री बोली—"देव! मेरे सास-

ससुर जो रानी राजा थे, राज्य छिन जाने पर वनवासी है और वे अन्धे है। आप वर दें कि वे पूर्ववत् समृद्धि और स्वास्थ्य पावें।" यमराज ने तथास्तु कहा और आगे बढे। कुछ देर बाद उन्होंने देखा सावित्री उनके पीछे-पीछे आ रही है। यमराज रुके और बोले—"तुम्हारा कष्ट नही देखा जाता—तुम लौट जाओ।" सावित्री बोली—"भगवान्! पतिव्रता को पति का अनुगमन करने में कोई कष्ट नहीं है। और फिर मैं आप जैसे करुणा दयामय देवता के साथ हूँ। तब मैं इस अपूर्व अवसर को छोड़ धरती पर""।"

सावित्री की मार्मिक वाणी सुनकर यमराज बड़े प्रभावित हुए और बोले—सावित्री! मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे एक वर सत्यवान के प्राण छोड़ कर और मांगो। सावित्री ने कहा—"देव! मेरे पूज्य ससुर राज्य से च्युत है उन्हे अपना राज्य वापस मिलें।" यमराज ने तथास्तु कहा और वे आगे बोले—"सावित्री, तुम्हारी यह अभिलाषा भी पूरी हुई। अब तुम लौट जाओ। सास-ससुर की सेवा करो और मुझे अपना कर्तव्य करने दो।"

यमराज की बातें सुनकर सावित्री रो पड़ी और धीर-गम्भीर-मार्मिक स्वर में बोली—"भगवन्! प्राणि मात्र के साथ अद्रोह भाव रखना सत्पुरुषो का कर्तव्य है कि जो मनसा-वाचा-कर्मणा सभी को सुख और कल्याण पहुँचाते है। मैं आपको इस त्रिभुवन मे न केवल सत्पुरुषों में अग्रणी मानती हूँ। प्रत्युत् धर्म का नियामक समझती हूँ। फिर क्यों आप अपनी मर्यादा-गरिमा भूल कर मुझे बार-बार पृथ्वी पर लौट जाने की आज्ञा दे रहे है। मैं हैरान हूँ देव! कि आप एक और तो अपनी प्रसन्नता की बात कहते है और दूसरी ओर मुझे ऐसे काम करने की प्रेरणा देते है जो जीवन को नरक बना देंगे। आप ही सोचें पतिविहीना नारी का जीवन नरक नही तो और क्या है?" सावित्री की इस भावभरी मर्मभरी बात ने यमराज के नीरस हृदय को भी सरस बना दिया। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कहा सावित्री! लो तीसरा वर मांगो। सावित्री ने कहा—मेरे पूज्य पिता पुत्रहीन हैं। वे बड़े कष्ट में है। मुझे वर दें कि मेरे पूज्य पिता के सौ पुत्र हो।"

यमराज तथास्तु कह कर और सावित्री को पीछे लौट जाने का निर्देश दे आगे बढ़े ही थे कि रुक गये और देखा सावित्री लौट नही रही है। वे बोले—"सावित्री, लौटती क्यों नही।" सावित्री वेदना व्यथित हो बोली—"भगवन्! मैं अपने पूज्य पति के चरणों की शीतल छाया छोड़कर भूलोक में वैधव्य का जलता जीवन सहन नही कर सकती। मेरा घर वही जहाँ मेरा पतिदेव। देव! आप सन्त शिरोमणि हैं—आप ज्ञानियों को ज्ञान सिखाते है। [illegible] अज्ञअबला आपको क्या समझा सकती हूँ। सन्त तथा ज्ञानी लोग सुख-दुःख से लेकर अपने

सब ज्ञान बल से सूर्य को भी वश्य बना लेते हैं—पृथ्वी को जीत लेते हैं और शरीर को क्षणभंगुर जान कर प्राणियों पर दया-भाव रखते हैं। और तब आप मुझ असहाया दुखिया अबला पर दया भाव रख कर ऐसी क्रूरता और कठोरता भरी आज्ञा क्यों देते हैं।" सावित्री की निश्चय भरी वाणी ने यमराज के हृदय को जीत लिया। वे समझ गये कि अबला से पार पाना कठिन ही नहीं असंभव है। वे द्रवित हो उठे और बोले—"देवि! तुमने मेरा हृदय जीत लिया है। मैं तुम्हें एक और वर देना चाहता हूँ सत्यवान के प्राणों को छोड़ कर दुर्लभ-से-दुर्लभ कोई भी वर मांगो मैं तुम्हें दूंगा!"

सावित्री हर्षित हुई और समझ गई अब यमराज भाग नहीं सकते। वह धीर-वीर-गंभीर वाणी में विनयावनत हो बोली—"भगवन्। मुझे पूज्य पति के बिना किसी सुख की स्वर्ग, अपवर्ग लोक या परलोक की कोई कामना नहीं, यहाँ तक कि मैं पति के बिना अपने इस जीवन को भी नहीं रखना चाहती हूँ। किन्तु फिर भी मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहती हूँ। यदि आप मुझ पर कृपा करके एक और वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दें कि सत्यवान से मुझे सौ पुत्रों की प्राप्ति हो। सावित्री की बात पूरी भी न हुई थी कि आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी। देवता लोग आनन्द विह्वल हो नृत्य गान करने लगे। यमराज ने देखा-सबके सब सावित्री को धन्य धन्य कह रहे हैं तथा उसका यशोगान कर रहे हैं। उन्होंने सावित्री की ओर देखा और प्रसन्न हो बोले—"बेटी, तुम्हारी यह अभिलाषा भी पूरी होगी। तुम्हें सत्यवान से सौ पुत्र होंगे।"

यमराज ने सत्यवान के लघु शरीर को पाशमुक्त किया और अपने दूतों के साथ अन्तर्धान हुए। इधर सत्यवान का प्राणहीन शरीर जीवन्त हो उठा। उसने देखा सावित्री आकाश मार्ग से नीचे उतर रही है। उसने दौड़ कर सावित्री को गले लगाया। सावित्री ने यमराज की तमाम बातें बताईं। सारा वन प्रान्तर आनन्द आश्चर्य में डूबता उतरा रहा था। सारी प्रकृति में आनन्द भर गया।

उधर सत्यवान के माता-पिता की आँखें जब अपने आप ज्योतित हो उठीं तो उनमें यौवन और उल्लास एक साथ उमड़ पड़े। किन्तु अपने पुत्र और पुत्र-वधू को न देख पाकर वियोग विह्वल हो बिलखने लगे। ठीक इसी समय वे दोनों आ गये और सावित्री ने तमाम बातें सुनाईं। वे अपार हर्ष में सराबोर हो गये।

"सावित्री-सत्यवान की अनुपम कथा तीनों लोकों में चाँदनी के सामने छा गई। सावित्री के द्युमत्सेन की बिछुड़ी प्रजा ने अपने तत्कालीन राजा रुक्मी को सिंहासन छोड़ने के लिए बाध्य किया और वे (प्रजा) अपने राजा और राजकुमार

के लिए पागल हो उठीं। जल्दी ही राजा पुत्र और पुत्रवधू के साथ मिल गये और वे सिंहासन पर बैठाये गये।"

"यमराज के वरदान स्वरूप राजा द्युमतसेन के सौ पुत्र हुए। राजा अश्वपति के सौ पुत्र हुए तथा सावित्री-सत्यवान के भी सौ पुत्र हुए। दोनों ही राज परिवार अनन्त सुख-भोग करते हुए बहुत दिन जीवित रहे।"

सावित्री-सत्यवान की यह पावन पुराण कथा सौभाग्यवती नारियों के लिए अवश्य श्रवणीय है। यह कथा युग-युग से नारियों को उद्‌बोधित करती रही है और यह आशा-विश्वास है कि जब तक चन्द्र दिवाकर हैं इस पुण्य कथा को श्रवण करने वाली नारियाँ मनोरथ पूर्णा बनी रहेंगी।

गंगा दशहरा

गंगा दशहरा ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को पड़ता है। उस दिन दशमी के अलावा दश योग का मिलन होता है। यों तो गंगा स्नान का सदा महत्त्व है, किन्तु गंगा दशहरा पर किंवा इस मास में या इस ऋतु में स्नान का बड़ा महत्त्व है। इसी समय ठेठ गंगोत्तरी से पिघला हुआ हिमजल आता है। गंगास्नान के साथ पितृ-तर्पण का संबंध है। फिर उस दिन दान की बड़ी महिमा कही गयी है। इस स्नान-पूजा में दस वस्तुओं का विधान है। इसमें पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल सभी दस प्रकार के अपेक्षित हैं। दक्षिणा भी दस ब्राह्मणों को होनी चाहिए। इससे कायिक, वाचिक और मानसिक आदि दस प्रकार के सभी कष्ट-कलुष-पाप कट जाते हैं और गंगा के व्रती दिव्यलोकाधिकारी होते हैं। हम पतित पावनी गंगा की महिमा-गरिमा से पूर्णतया परिचित हैं। गंगा स्नान से लोक परलोक दोनों के दरवाजे मुक्त हो जाते हैं।

गंगादेवी हैं—आकाश, पाताल और भूतल की। वह सरिता है पुण्य, पुरातन और पवित्र। ऋग्वेद में गंगा का उल्लेख दो बार हुआ है। पुराण में स्वर्ग गंगा का वर्णन मिलता है। यह सर्वप्रथम श्री हरिपदनख से द्रवित हुई। स्वर्ग से गंगा को लाने वाला भगीरथ था। उसने अपने कुल के उद्धार के लिए गंगा को भूतल पर उतारा और उससे मानव-उद्धार हुआ और होता रहा है। कहा जाता है कि मर्त्यलोक आने पर गंगा को बड़ा क्रोध हुआ। उस क्रोध से सारा संसार त्राहिमाम् कर उठा। तब भगवान् शिव ने गंगा को अपनी जटा में धारण किया और शिव

का नाम गंगाघर पड़ा। शिव की जटा से गंगा कई धाराओं में विभक्त हो गयी। इन धाराओं में सप्तसिन्धु-सात धाराएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। जब घहराती गरजती गंगा आगे बढ़ रही थी तब ऋषि जह्नु तपस्यारत थे। इससे उनकी तपस्या में विघ्न पहुँचा। वे रुष्ट हुए। उन्हें क्रोध आया और उन्होंने गंगा को अपनी जाँघ में बन्द कर लिया। बाद में विशेष प्रार्थना करने पर उन्होंने गंगा को आगे बढ़ने-बहने दिया। इससे गंगा नाम जाह्नवी पड़ा।

गंगा हिमवत और मेनाकी दुहिता है। उमा गंगा की छोटी बहन कही जाती है। गंगा का ब्याह शांतनु से हुआ था। महावीर भीष्म जो आजीवन ब्रह्मचारी रहे और जिन्हें इच्छा मृत्यु मिली थी, गंगा के पुत्र थे। भीष्म का दूसरा नाम गांगेय है। गंगा कार्तिकेय की विमाता है। इसीलिए उसे कुमारसूजी कहा जाता है। गंगा के अन्य नाम हैं : भद्र, सोभा, नान्दिनी किराती, देवमूर्ति, हरशेखरा, मन्दाकिनी, त्रिपथगा।

गंगा महिमा शास्त्रसिद्ध है। गंगाजल का स्पर्शमात्र सकल पापकलुष नाशक है। चरक के अनुसार गंगाजल पथ्य है। 'भोजन कुतूहल', नामक एक हस्त लिखित ग्रन्थ में गंगाजल को शीतल, स्वादु, स्वच्छ, अत्यन्त रुचिकर, पथ्य, भोजन पचाने वाला, पाचन-शक्ति बढ़ाने वाला, सब पापों को हरने वाला, प्यास को शान्त तथा मोह को नष्ट करने वाला, क्षुधा बढ़ाने वाला एवं बुद्धि को बढ़ाने वाला कहा गया है। यह सब जाति और सब धर्मवालों के लिए पुनीत और फलद है। विश्वविश्रुत पर्यटक इब्न बतूताने लिखा है कि सुलतान मुहम्मद तुगलक के लिए गंगा जल बराबर दौलताबाद जाया करता था। इसके वहाँ पहुँचने में चालीस दिन लग जाते थे। अकबर महान का गंगाजल प्रेम इतिहास प्रसिद्ध है। आईन अकबरी के लेखक अबुल फजल ने लिखा है कि मुगल बादशाह अकबर गंगा जल को अमृत मानते हैं। वे घर में या यात्रा में गंगाजल ही का व्यवहार करते हैं। वे जहाँ कहीं भी रहते हैं, उनके पास गंगाजल पहुँचने का स्थायी प्रबन्ध रहता है। गंगाजल औरंगजेब को बड़ा प्यारा था। वह आजीवन गंगाजल से काम लेता रहा। प्रसिद्ध फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने औरंगजेब के गंगाजल-प्रेम का उल्लेख किया है। उसने लिखा है—"वह खाने-पीने की सामग्री में सदैव गंगाजल का व्यवहार करता था। यही नहीं दरबार के अन्य लोग भी गंगाजल पान करते थे। यात्रा में भी गंगाजल साथ चलता था।"

देशी-विदेशी प्राचीन और आधुनिक कितनी ही पुस्तकों में गंगाजल की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। मधुरता, स्वाद और हल्केपन में गंगाजल के समान और कोई जल नहीं है। गंगाजल कितने ही दिनों तक रखे रहने पर भी खराब नहीं होता है। विवाह से लेकर श्राद्ध तक इस जल का प्रयोग एक समान होता

है। किसी समय अतिथि का सर्वाधिक सम्मान भोजन के समय गंगाजल पीने के लिए देता था। गंगाजल पर कोई कितना खर्च करता है उससे उसकी श्री समृद्धि जानी जाती थी। पूजा उत्सव पर गंगाजल का अधिक व्यय करना चूंकि उसके जुटाने में बड़ी रकम लगती थी, लोग अपनी मर्यादा समझते थे। वास्तव में गंगा और गंगाजल की महिमा के सम्बन्ध में जितना कुछ कहा जाय थोड़ा है।

हमारा भारतीय साहित्य गंगा-गरिमा-गान से भरा हुआ है। शायद ही कोई छोटी या साहित्यकार हो जिसने गंगा-गौरव का बखान न किया हो। व्यास, वाल्मीकि से कालिदास रवीन्द्र तक में हम गंगा वर्णन पाते हैं। गंगा हमारी भारतीय सभ्यता संस्कृति की प्रतीक है। हम गंगा को पाकर धन्य हुए हैं।

गंगा दशहरा को इस पुनीत पवित्र जलवाली गंगा का आविर्भाव-दिवस मनाया जाता है। प्रायः गंगा दशहरा के दिन गंगा में बाढ़ देखी जाती है। उस दिन से क्रमक्रम से गंगा का बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। राजा भगीरथ के पुण्य-प्रताप से प्राप्त यह गंगा मन्वन्तर और कल्पान्तर तक मानव को सुखी और शुचि बनाती प्रवाहित होती रहे—हमारी यही कामना है।

रथ-यात्रा

देव-देवी को रथ पर बिठाकर खींचने का अनुष्ठान रथ-यात्रा है। यह अनुष्ठान अति प्राचीन धर्मोत्सव है। एक समय था जब कि सभी सम्प्रदाय वाले अपने उपास्यदेव की रथयात्रा करते थे। इसमें राजा रंक-फकीर-आबाल-वृद्ध-वनिता समभाव से समस्त मर्यादा के साथ भाग लेते थे। सम्प्रति रथ-यात्रा कहने से साधारणतः जगन्नाथ देव की रथ-यात्रा समझी जाती है।

रथ-यात्रा का प्रचलन कितना पुराना है इसके सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। हमारा साधारण विश्वास है कि रथ-यात्रा का पर्व मूर्ति-पूजा के प्रचलन के साथ आया। फाहियान ने भगवान् बुद्ध की रथ-यात्रा का वर्णन विशद और उदात्त शब्दों में किया है। इसमें उसने स्वयं भाग लिया था। यह बुद्ध का जन्म दिन था। इसीलिए बहुतों की यह धारणा है कि रथ-यात्रा का प्रचार बौद्धों से हुआ। किन्तु इसमें सन्देह करने वालों की संख्या नगण्य नहीं है। हमारे पुराणों में विभिन्न देव-देवियों की रथ-यात्रा का वर्णन मिलता है। कूर्म और

भविष्य पुराण में माह मास में सूर्य को रथ-यात्रा, देवी पुराण में कार्तिक मास मे देवी की रथ-यात्रा, पद्म वराह और भविष्योत्तर पुराण मे कार्तिक मास में श्री कृष्ण की रथयात्रा, मत्स्य और एकाम्र पुराण मे चैत्र मास में शिव की रथयात्रा और स्वयंभू पुराण मे चातुर्मास्य के बाद पार्श्वनाथ और महावीर की रथयात्रा का विस्तृत विवरण पाया जाता है। यही क्यों ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनमे पता चलता है कि यूरोप मे भी रथयात्रा का प्रचलन था। सिसली द्वीप में आज भी यह रथयात्रा प्राचीन गौरव-गरिमा और उत्साह भक्ति मे मनायी जाती है।

भविष्य पुराण में सूर्य देव की रथयात्रा का बड़ा रोचक विधान आता है। सूर्य देव की यह रथयात्रा माघ मास की शुक्ला सप्तमी को होती है। इस यात्रा में रात्रिकाल मे सूर्य देव को रथ पर चढ़ाकर रात आमोद-प्रमोद में बितायी जाती है। रथ-भ्रमण के साथ नाना प्रकार के वाद्योत्सव होते हैं। सूर्य देव के रथ की संवत्सर के अवयव द्वारा कल्पना की जाती है। इसमें ज्योतिश्चक्रोक्त सर्व नक्षत्रादिका समावेश करना पड़ता है। रथ सोने चाँदी किंवा दृढ़ दारुकाष्ठ का होना चाहिए। इसके आयुध और चक्र अत्यन्त दृढ़ होना चाहिए। इसमें नाना प्रकार के सत्कार्य, वेद पाठ, ब्राह्मण भोजन और देव-पूजा का अनुष्ठान होता है।

पद्म, स्कन्द और भविष्योत्तर पुराण के अनुसार विष्णु की रथयात्रा कार्तिक शुक्ला-द्वादशी की रात्रि मे होती है। कहा जाता है कि महाविष्णु का यह रथ सर्वप्रथम प्रह्लाद ने खींचा था। बाद में देवसिद्ध गन्धर्वों ने यह पवित्र अनुष्ठान किया। इसमें नगर प्रदक्षिणा के बाद रथ मन्दिर में लाया जाता है। इस रथ का एक-एक पद खींचने से एक-एक यज्ञ का फल प्राप्त होता है। रथस्थ विष्णु के दर्शनों से सबके सब वैकुण्ठाधिकारी होते हैं। इससे अशेष पुण्य का अर्जन होता है।

एकाम्र पुराण में शिव की रथ-यात्रा का वर्णन मिलता है। यह यात्रा अशोकाष्टमी महायात्रा है। यह रथ-यात्रा चैत्र मास की शुक्लाष्टमी को होती है। इस रथ को बनाने सजाने का सांगोपांग विधान है। रथ पर महादेव को बिठाकर धीरे-धीरे यात्रा करनी होती है। रथस्थ शिव के दर्शन आवागमन से मुक्तिदायक होते हैं। इस यात्रा के अनुष्ठाता शिव लोक को जाते हैं।

देवी पुराण में महादेवी की रथ-यात्रा का वर्णन है। यह यात्रा कार्तिक मास में तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी या पूर्णिमा के दिन होती है। इसमें सब तरह के अन्नपानादि के नैवेद्य के साथ बलि भी देनी होती है। तमाम राजपथ से घुमाकर देवी को पुनः स्वगृह में लाना पड़ता है। इस रथोत्सव से स्वर्ग प्राप्त होता है।

स्वयंभू पुरान में स्वयंभू नाथ बुद्ध की रथ-यात्रा का वर्णन है। यह रथ-यात्रा बुद्ध के जन्म दिन पर होती है। इसमें बीस बड़े-बड़े रथ जैसा कि फाहि-यान ने लिखा है सुसज्जित होकर बाहर निकलते हैं। इसमें क्या यति क्या श्रमण क्या ब्राह्मण क्या जन-साधारण सभी सोत्साह सम्मिलित होते हैं। भांति-भांति के वाद्य बजते हैं और आमोद-प्रमोद में जागरण होता है। इसमें भाग लेने वाले अक्षय पुण्य और सौभाग्य के भागी होते हैं।

जैनपुराण या जैन धर्म ग्रन्थ में पार्श्वनाथ और महावीर की रथयात्रा का विस्तृत विवरण है। यह यात्रा मार्गशीर्ष को होती है। यह यात्रा अपूर्व धूमधाम से होती है। इस यात्रा में लोक-परलोक के अनुपम वैभव का प्रदर्शन होता है। यात्रा भागी सबके सब महापुण्य संचय करते हैं।

नेपाल में आज भी कई प्रकार की रथ-यात्राएँ होती हैं। इन यात्राओं की एक विशिष्टता यह है कि इनमें सभी सम्प्रदायवाले समभाव से भाग लेते हैं। इन यात्राओं में चार यात्राएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। पहली यात्रा भैरव यात्रा या लिंग-यात्रा कहाती है। यह यात्रा वैशाख कृष्ण प्रतिपद या द्वितीया को होती है। इसमें एक रथ पर भैरव और दूसरे रथ पर भैरवी की यात्रा करायी जाती है। दूसरी यात्रा नेता देवी की यात्रा देवी यात्रा है। यह यात्रा वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को होती है। तीसरी यात्रा कुमारी रथ-यात्रा है। यह यात्रा यहाँ रथयात्रा मात् के नाम से पुकारी जाती है। इस यात्रा में देव-देवी की प्रतिमाएँ लेकर रथोत्सव नहीं प्रत्युत् अष्टमातृका कुमारी तथा गणेश और कुमार स्वरूप एक बालिका और दो बालक रथ पर पूजित होते हैं। इसमें नेपाल के राजा-रानी भी बड़ी मर्यादा और श्रद्धा से भाग लेते हैं। चौथी यात्रा मत्स्येन्द्र-यात्रा कहाती है। यह यात्रा चैत्र मास की शुक्ला अष्टमी, नवमी, दशमी और एका-दशी को मनायी जाती है। हालांकि यह रथयात्रा प्रधानतः बौद्धोत्सव है, फिर भी इसमें सारे नेपाली सम्मिलित होते हैं। यह नेपाल का सर्वप्रधान रथोत्सव माना जाता है।

कलियुग में भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा का सर्वाधिक महत्त्व है—यह सर्वविदित है। आषाढ़ मास की पुष्यनक्षत्र युक्त शुक्ला द्वितीया तिथि को जग-न्नाथ देव की रथयात्रा होती है। सुभद्रा और बलराम के साथ जगन्नाथ देव को रथारूढ करा उत्सव करना पड़ता है। उस दिन विविध उत्सवों के साथ ब्राह्मण भोजन कराने का पुण्य लाभ किया जाता है। यात्रा रथ को सात दिनों तक जलाशय तटपर रखते हैं। आठवें दिन रथ को पुनः सजाकर नवें दिन पुनर्यात्रा होती है। इसे 'उल्टा रथ' भी कहते हैं। श्री जगन्नाथ के रथ का विशद वर्णन का आरम्भ ही एक महान् उत्सव होता है। इसमें लोहे के सोलह आर ै

सोलह चक्र बनाये जाते हैं । काठ की सुन्दर पुतलियाँ लटकायी जाती हैं । रथ मध्य में वेदी और मण्डप की रचना होती है । इसमें चार तोरण और चार द्वार नाना प्रकार के चित्रों से सज्जित और हेमपट भूषित होते हैं । उस पर बाईस हाथ की पताका फहराती है । दैत्य-दानवों का बल दर्पनाशक यह रथ सुवर्ण मण्डित होता है । रथयात्रा विशेष स्वस्तिवाचन पूर्वक आरम्भ होती है । जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा का स्तवन करके उन्हें प्रणाम किया जाता है । पीछे रथोत्सर्ग और रथ की सात बार प्रदक्षिणाकर जय ध्वनि की जाती है तथा कीर्तनोत्सव होता है । पुनर्यात्रा में इसी प्रकार उत्सव सम्पन्न होता है । इन दिनों जप होमादि महोत्सव करना भी उचित माना गया है । जो रथ पर या जाते समय विष्णु के दर्शन करते हैं उनको विष्णुलोक की गति होती है ।

जगन्नाथ की इस रथ यात्रा के उपलक्ष्य में आज भी जगन्नाथपुरी में लाखों की भीड़ होती है । 'रथे च वामन दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते' इस विश्वास के साथ लक्ष-लक्ष नरनारी जगन्नाथ के रथ दर्शन को जाते हैं । यह यात्रा जो पुराण, साहित्य वर्णित है अधुना राष्ट्रिय रूप धारण कर रही है । यों तो यह यात्रा लोक परलोक सुख-कल्याण शुभ लाभ ऋद्धि-सिद्धि प्रदायिनी है फिर भी इसका जो सांस्कृतिक रूप विकसित हो रहा है वह अतिदिव्य और प्रेरक है । हमारी राष्ट्रियता और भारतीयता इसमें मानो पिरोयी गयी है । इस रथयात्रा से हम अपने पर्व-त्योहार की नयी परिभाषा गढ़ सकते हैं और अपनी सभ्यता-संस्कृति को नवप्रेरक बना सकते हैं ।

गुरु पूर्णिमा

पवित्र आषाढ़ मास की पुण्या पूर्णिमा तिथि को व्यास पूर्णिमा की संज्ञा दी गयी है । कारण इसी पुण्य तिथि को व्यास का जन्म हुआ था एवं इसी पुनीत आषाढ़ पूर्णिमा को व्यास की समस्त रचनाओं वेदशास्त्र पुराण विशेषकर जय या महाभारत का श्री गणेश हुआ था ।

व्यास पूर्णिमा का दिन शिष्यों विद्यार्थियों की गुरुपूजा का दिन है । अनादि-काल से समस्त विद्यार्थी समाज-सकल शिष्य समुदाय गुरु के पास नहा धोकर, स्वच्छ-पवित्र वस्त्र धारण कर जमा होते हैं । गुरु को उच्चासन पर आसीन करा उनका षोडशोपचार पूजन किया जाता है । माल्यार्पण किया जाता है । धूप

दीप सहित आरती उतारी जाती है। फूल, फल, वस्त्र, द्रव्य गुरु चरणों पर अर्पित किये जाते हैं और अहं, प्रमाद, भूल और त्रुटि के लिए क्षमा याचना करते हुए उनके शुभाशीर्वाद की कामना याचना की जाती है। इस पुण्य पवित्र दिवस पर अवसर पर गुरुप्रवचन सहित महाभारत सुनने पढने का विशेष महत्व है।

वेद-शास्त्र पुराण तथा महाभारत के कर्त्ता, रचयिता संग्राहक संरक्षक एव व्यास गुरुव्यास हैं। इन्हो कारणो से उन्हें वेदव्यास भी कहा जाता है। व्यास की समस्त कृतियाँ इनकी सारी रचनाएँ शाश्वत हैं।

वेदव्यास ऋषि पराशर का तथा सत्यवती के पुत्र हैं। इनकी माता सत्यवती ने आगे चलकर महाराजा शांतुन से विवाह किया। शतनु और सत्यवती के दो पुत्र हुए जो निःसन्तान गोलोकवासी हुए। माता सत्यवती की आज्ञा से प्राप्त निःसन्तान वधुओ के धृतराष्ट्र और पाडु पुत्रों में महाभारत का युद्ध हुआ जो भारत के कल्पांत का कारण हुआ।

भगवान् वेदव्यास भारतीय ज्ञानविज्ञान की महिमा-गरिमा के अपूर्व अक्षय, अनन्त, अद्भुत एवं अपार प्रेरक उद्धारक एवं नायक हैं। उन्होने अपनी तमाम कृतियों में अपने ज्ञान, अनुभव एवं कल्पनाओं की वह थाती सौंपी है जो युगों कल्पान्तरों एवं मन्वन्तरों तक मानव कल्याणकारी बनी रहेगी। वे भारतीय ऋषि, मुनि, तपस्वी योगी की उन्नत उज्ज्वल अपूर्व परम्परा में वरेण्य हैं। उन्होंने अपनी कठोर साधना एवं उग्र तपस्या से विश्व मानव कल्याण के जो ज्ञान रत्नराशि की सृष्टि की उपलब्धि करायी है उसके लिए सारा संसार सदा-सदा के लिए नतमस्तक है और नतमस्तक होता रहेगा। इनकी अमृत वाणी चक्रवर्ती, झंझायाती आंधियों तूफानों को पारकर भारतीय चेतनाओं के ऐहिक और पारलौकिक निःश्रेयस मे युग-युग की सृष्टि को आप्यायित करती रही है और करती रहेगी।

कहते है व्यास कृष्ण वर्ण के थे और यमुना के एक द्वीप पर बसते थे। फलस्वरूप उनका नाम पड़ा कृष्ण द्वैपायाना व्यास। प्रारम्भिक जीवन के अभावों को दूर करने तथा जीवन में कुछ कर दिखाने के संकल्प लेकर कठोर तप किया। उनका यह तप हिमालय की गुफाओ में बदरी वन में शुरू होकर समाप्त हुआ। इस फलवान तप से व्यास को वह विध मिली जिसे पाकर वे अमर हो गये। युग-युग के सात अमरो में वेदव्यास का नाम आता है। व्यास ने बदरीवन मे रहकर अध्ययन-अध्यापन किया एवं बादरायण के नाम से विश्व-युग प्रख्यात विख्यात हुए। उन्होंने अपने योग्यतम चार शिष्यो जैल, वैशम्पायन जैमिनी तथा सुमतु के साथ भारतीय वाङ्मय को वह तत्कालीन स्वरूप प्रदान

किया जो सर्वकालीन बन गया। वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् महाकाव्य के शब्दों पर व्यासो एव उनके तमाम शिष्यो तथा सहायकों की अमिट छाप है।

महाभारत भारतीय वाङ्मय का अद्भुत-अपूर्व-आश्चर्यमय ग्रन्थ है। इसे पाँचवाँ वेद कहा गया है। यह विश्व-जाति एवं विश्व-समाज का वृहत् विश्वकोष है। कहा जाता है कि महाभारत में जो कुछ कहा गया है, वही अन्यान्य ग्रन्थो मे है और जो वस्तु इसमे वर्णित नही है वह कही नही है। मानव जीवन का ऐसा एक भी प्रसग न होगा, जिसका वर्णन महाभारत मे न हो। सत्यवादी, सर्वज्ञ, सभी विधियों के ज्ञाता, धर्मात्मा, ज्ञानी, अतीन्द्रिय तपस्या से पवित्रात्मा एवं ऐश्य वाले महर्षि वेदव्यास ने अपने दिव्य नेत्रो से देखकर इस परमपुण्य वाले इतिहास महाभारत की रचना की। धर्म, राजनीति, समाजनीति, रणनीति, वाणिज्य, व्यवसाय, कृषि, पारिवारिक अनुशासन, जप-तप, यज्ञ-हवन, आचार विचार, शिष्टाचार सदाचार, आयुर्वेद धनुर्वेद, विज्ञान, अध्यात्म, वीरता, शरणागत वत्सलता, दया, क्षमा, नीतिज्ञान, अहिंसा, परोपकार आदि संसार को सुखमय शांतिमय और तेजस्वी बनाने वाले एवं मानव मात्र के तथा प्राणिमात्र के कल्याण करने वाले कल्पित, यथार्थ, अयथार्थ एव आदर्श प्रसंग इस वेद महाभारत महाकाव्य में है। समस्त सृष्टि का विश्वास है कि मानव जाति जब तक जीवित रहेगी एवं जब भी जीवन मे जो कोई समस्याएँ आयेंगी उन सबका समाधान महाभारत से होता रहेगा।

महर्षि वेदव्यास खिले हुए सुन्दर कमल के समान नेत्रवाले विशाल बुद्धि के थे। उन्होने भारत रूपी तेल भरकर अर्थात् भारत के इतिहास से शक्ति और सम्पदा पाकर ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित किया था। वे देश के सम्पूर्ण भौतिक रूप मे पूर्णतया परिचित थे एव उनका इससे निकटतम सम्बन्ध था। एक एक सरोवर, कुण्ड, नदी और निर्झर की महिमा से उन्होंने देश को परिचित कराया, उसको नाम दिया एवं उसका पवित्र महान् महत्व बतलाया। भारतीय संस्कृति और जन जीवन से चिरकाल से सम्बन्धित और जन जीवन से महाभिवेद व्यास सम्पूर्ण भारतीय जनता के जनगुरु हैं, लोक गुरु हैं, युग गुरु है तथा गुरुगुरु हैं। इन्ही गुरु की स्मृति में आषाढ मास की पूर्णिमा व्यास पूर्णिमा के नाम से मनायी जाती है। इस दिन को गुरु पर्व भी कहा जाता है। इस पर्व के अवसर पर गुरु का आदर्श था—"जिस प्रकार जल जलाशय अथवा नदियों की ओर प्रवाहित होता है, दिन और मास जिस प्रकार वर्ष की ओर चलते हैं उसी तरह सब ब्रह्मचारी मेरे पास आयें। उनकी शंकाएँ दूर हो एवं उनका ज्ञान निरन्तर गतिमान हो। उनकी वृत्ति संयत और पवित्र बने और ऐसे उज्ज्वल चरित्र विद्यार्थियो के द्वारा मेरी यह कीर्ति सर्वत्र फैले।" एवं शिष्य का आदर्श था "इतनी वत्सलता इतनी

ममता हमे और कहाँ मिलेगी हम केवल आपको पहचानते है। हम आपकी शरण में है और आपकी लघु आज्ञा भी हमारे लिए प्रमाण है। आप ही हमारे पिता है, आप ही हमें उस पार ले जाने वाले है, आपके समान ससार में दूसरा कौन है जो ऋषि कहलाये ? आपको मेरा वारबार प्रणाम स्वीकार हो। आज की जटिल समस्याओं का हल इस आधुनिक काल के इस गुरु पूर्णिमा, व्यास पूर्णिमा, गुरु-पूजा, व्याम पूजा के अवसर पर निकाला जा सकता है।

व्यास पूजा

आषाढ़ पूर्णिमा को व्यास-पूजा का विधान है। यह पूजा अत्यन्त लोक कल्याणकारिणी तथा प्रभूत आध्यात्म ज्ञान दायिनी मानी गई है। इस पूजा का माहात्म्य उन साधु-संन्यासियों के लिए विशेष है, जिन्होंने संसार से नाता तोड़ रखा है, किन्तु जो सर्व कल्याण के लिए इस पूजा में रत होते है। कहना नही होगा कि वे वही व्यास है, जिन्होंने वेद, पुराण, शास्त्र तथा महाभारत की रचना की है।

संन्यासियों द्वारा व्यास-पूजा के किये जाने का एक विशेष कारण आदि शंकराचार्य का व्यास और व्यास-पूजा से संपृक्त होना कहा गया है। यह मानी हुई बात है कि आदि शंकराचार्य व्यास के अवतार है, अर्थात् शंकराचार्य ही व्यास है तथा व्यास ही शंकराचार्य है। फलतः शंकराचार्य की पूजा व्यास-पूजा है एवं व्यास-पूजा शंकराचार्य की पूजा है। जो हो, संन्यासी शकराचार्य अपना गुरु मानते है अतः व्याम-पूजा के बहाने वे गुरु-पूजा करते है।

उक्त पूजा की परम्परा बड़ी मनोहारिणी और दर्शनीय है। इस अवसर पर एक नवीन वस्त्र-खण्ड भूमि पर फैला दिया जाता है। उस पर सिद्ध चावल (भात) डाला जाता है और उसमें नींबू का रस निचोडा जाता है। इस वहाने आदि शकर एवं चार शिष्यों का आह्वान किया जाता है तथा वाद मे विधिवत् पूजा की जाती है एवं पूजा-समाप्ति पर प्रसाद वितरित किया जाता है। लोग पूजा-प्रसाद अपने घर ले जाते है एवं घर में तैयार किये गये भात में उने मिला देते है तथा उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करते है।

कहा गया है कि वस्त्र और अन्न (भात) में लक्ष्मी निवास करती है और नीम्बू के सम्बन्ध में आदि काल से ही पारम्परिक विधा है कि जब लोग अपने गुरुजनों के पास जाते है तो नीम्बू भेंट रूप ले जाते है। ऐसे लगता है कि भोग

किया प्रसाद की परम्परा आदि काल से आ रही है। फिर व्यास-पूजा तो लक्ष्मी-पूजा है जिसमें लक्ष्मी सहित भगवान् विष्णु की पूजा होती है जिसके द्वारा सर्व कल्प की कामना की जाती है।

इस व्यास-पूजा के अवसर पर भगवान् आदि शंकर की जीवन-कथा का उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है। कथा इस प्रकार है—

शंकर का जन्म दक्षिण भारत के मालाबार में अलवये नदी के तट पर स्थित कान्लडी नामक गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम शिव गुरु तथा माता का आर्यम्बा था। उनका जन्म वैशाख मास की पूर्णिमा को हुआ था। यह पूर्णिमा बड़े-बड़े देव पुरुषों तथा महात्माओं का जन्म-दिवस रही है। जिस दिन शंकर का जन्म हुआ लोगों ने वातावरण में एक अद्भुत-अपूर्व परिवर्तन का आभास-अनुभव किया। प्रकृति ने आनन्द गीत गाये तथा पेड़-पौधों ने फल-फूल दान किये। ऐसा लगा जैसे कोई नवयुग आ रहा है।

शंकर में बचपन से ही वैराग्य की प्रवृत्ति थी। वे कुछ ही दिनों वेद-शास्त्रों के सिद्ध हस्त विद्वान हो गये। उनकी वैराग्य प्रवृत्ति जोर मारने लगी। वैराग्य में जाने के पूर्व मातृ-स्वीकृति अनिवार्य थी। किन्तु माता इसके लिए किसी भी कीमत पर कतई तैयार नहीं थी। कारण, शंकर माता के एकलौते थे। शंकर लाचार थे—असमंजस में थे। किन्तु शीघ्र ही एक ऐसी घटना घटी, कि जिसने एक भीषण परिवर्तन ला खड़ा किया। एक दिन शंकर जब नदी में स्नान कर रहे थे—डूबने लगे। माता हा हाकार कर उठी। लोग-बाग उन्हें डूबने से बचाने के लिए दौड़ पड़े। ठीक उसी समय शंकर के कण्ठ से आवाज आई—"माता यदि शंकर को वैराग्य में जाने के लिए स्वीकृति दें तो उनकी जान बच सकती है!" विह्वला माता ने हामी भरी। शंकर की जान बच गई और वे तत्क्षण माता का आशीर्वाद ले वैराग्य में चले गये।

शंकर कुल चौतीस वर्ष तक जीये। किन्तु इस बीच उन्होंने जो कुछ किया वह केवल भगवान् से ही सम्भव हो सकता था। प्रचुर-भरपूर लिखने के सिवा उन्होंने सारे भारत की पद यात्रा की। वे बदरीनारायण, केदारनाथ, नेपाल, अयोध्या, गोकुल, पुरी, रामेश्वरम्, कन्या कुमारी, तिरुपति और काञ्जीवरम् की यात्रा पर गये। उन्होंने अन्त में श्री चक्र (नगर) की कल्पना-परिकल्पना एवं स्थापना की। भारत की चारों दिशाओं में उनके चार मठ, उत्तर में बदरीनारायण, पूरब में पुरी, दक्षिण में शृंगेरी तथा पश्चिम में द्वारका है। इस प्रकार उन्होंने समग्र-सम्पूर्ण भारत को चार स्तम्भों में बाँध कर सदा-सदा के लिए धर्म प्रधान देश को अजर-अमर-शास्वत-चिरन्तन बना दिया।

शंकर के आध्यात्मिक गुरु श्री भागवत पाद थे। उन्हीं से मन्त्र ग्रहण कर

वे सारे देश में डूबते धर्म की रक्षा तथा जीर्णोद्धार और पुनरुद्धार के लिए चलते रहे–चलते रहे। उस समय भारत में अद्वैत, द्वैत तथा विशिष्टाद्वैत नाम से त्रिदर्शन का बोलबाला था। शंकर अद्वैत के जन्मदाता माने जाते हैं तथा मध्वाचार्य अद्वैत के एवं रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत के।

यों तो शंकर अनेकानेक शिष्य थे, किन्तु पद्मपद, हस्तामलव, तोटक तथा मंडन मिश्र चार प्रमुख शिष्य समझे जाते हैं। शंकर प्रयाग तथा काशी की यात्रा समाप्त कैलाश गये और वहां से वे शंकर भगवान् के पंच लिंग—बोग, मुक्ति, वर, योग तथा मोक्ष लिंग ले आये और उन्हें शृंगेरी, कंयर नेत्र, नेपाल कुंभकोणम् तथा चिदम्बरम् में उन्हें स्थापित किया। शंकर का शृगेरी तीर्थ शारदा पीठ के नाम से जाना जाता है; क्योंकि उन्होंने शिवलिंग के पास भगवती सरस्वती की स्थापना लोकहित को दृष्टि में रखते हुए किया। इतना ही नही, उन्होने देश के कितने ही स्थानों में अध्ययन-अध्यापन तथा पूजा-अर्चना के लिए मन्दिर स्थापित किया।

शंकर का भगवत्गीता पर भाष्य विश्व-विश्रुत तथा युग विख्यात माना जाता है।

शंकर की जीवन-कथा अधूरी रह जायगी यदि उनके जीवन के प्रारम्भ में उनकी कुमारिल भट्ट से भेंट तथा जीवन के अन्त में होनेवाले मण्डन-भारती के साथ शंकर-शास्त्रार्थ का सक्षिप्त विवरण न दिया जाय। कहा जाता है कि जब शंकर पद यात्रा पर थे तब उन्हें मालूम हुआ कि उस युग के महान धर्मरक्षक भट्ट कुमारिल धर्म की बिगड़ती दशा देखकर तथा एतदर्थ किसी उपाय की आशा न देख कर अग्नि-प्रवेश कर गये। ठीक उसी समय शंकर वहां पहुँचे और उन्होंने सुना, कुमारिल भट्ट कह रहे थे—धर्म को बचाने वाला कोई नही——मैं निराश-हताश अग्नि में प्राण त्याग कर रहा हूँ।' शंकर ने कुमारिल भट्ट की मर्मवाणी सुनी और प्राण-हृदय को छूने वाले शब्दों में कहा—"महाराज, आप आश्वस्त होकर अपनी अन्तिम यात्रा करें। शंकर आपके पुण्य-प्रताप और आशीर्वाद से धर्म का पुनरुद्धार करेगा।" ऐसा समझा जाता है कि शंकर ने आचार्य भट्ट को दिये गये इस वचन का शत-प्रतिशत किया।

शंकर जब पद-यात्रा पर—देश-यात्रा पर—विजय-यात्रा पर थे तब उन्हें मालूम हुआ कि महिष्मती नगरी के विद्वान् पंडित मंडन मिश्र शंकर के दर्शन के साथ नहीं हैं। शंकर ने मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ करने की ठानी। शंकर मंडन मिश्र तथा उनकी विदुषी पत्नी भारती से मिले। शकर ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। मंडन मिश्र ने चुनौती स्वीकार की। इस शास्त्रार्थ के प्रसंग भारतीय वाङ्मय वर्णित है। काफी चढाव-उतार के बाद शंकर विजयी हुए और मंडन

मिश्र ने शंकर का शिष्यत्व ग्रहण किया। बाद में ही मंडन मिश्र शंकर के चार प्रमुख शिष्यों में जाने गये। ऐसा समझा जाता है इन पांचों महापुरुषों के सम्मिलित परिश्रम और प्रयास के फलस्वरूप भारतीय धर्म का न केवल जीर्णोद्धार और पुनरुद्धार हुआ प्रत्युत् इसकी जड़ पाताल में इस दृढ़ता से जमी कि आज भी भारतीय सनातन धर्म जीवित, सुरक्षित रहते हुए फहराता-लहराता रहा है।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि व्यास, महाभारत, लक्ष्मी, विष्णु और आदि शंकर से संपृक्त आषाढ़ पूर्णिमा सर्वतोभावेन सर्व लोक कल्याण कारिणी है तथा उस दिन का पूजा-व्रत-विधान दोनों लोकों को पुण्यमय, आनन्दमय और कल्याण बनाने वाला है।

नाग पंचमी

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि नाग पंचमी के नाम से विदित है। उस तिथि को नाग-पूजा होने के कारण ही उसे नाग पचमी कहा गया है। नाग पूजा की परम्परा पुरानी है। हमारे साहित्य में एतद्विषयक बहुत सारी बातें आई हैं। नाग पूजा हमारे देश में किसी-न-किसी रूप में सर्वत्र है। नाग और मानव का सम्बन्ध शुरू से ही कुछ अच्छा नहीं रहा है। नागों से मानव का भय खाना स्वाभाविक है और इसी भय के कारण मानव द्वारा नाग-पूजा एक स्वाभाविक प्रवृत्ति-प्रकृति है। पूजा में दिव्य शक्ति है। इससे पूज्य और पूजक दोनों के हृदय पावन-पवित्र बनते हैं। यही कारण है कि पुरखों ने दो विपरीत प्रकृति वालों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए नाग-पूजा चलाई थी। नाग-पूजा माहात्म्य में मनोवैज्ञानिकता के आधार पर नागों की भयंकरता कठोरता-क्रूरता की चर्चा न हो उनकी दयालुता निरीहता उपकारिता का ही वर्णन किया गया है। अवगुणों में गुणों के दर्शन भारतीय मनीषा की अद्भुत देन है। भारतीय साहित्य में नागों के गुण-दोषों का अपार वर्णन है।

नाग-पूजा के लिए गोबर की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा का विधान है। नाग पूजा करने वाला एक दिन पूर्व चतुर्थी को मात्र एक बार हल्का भोजन लेता है तथा पंचमी तिथि दिन का व्रत रखता है और सायंकाल पूजा के बाद भोजन ग्रहण करता है। पूजा करते समय शास्त्रीय विधियों का पालन किया जाता है। आवाहन, आसन, अर्घ्य, धूप, दीप, नैवद्य आदि का समर्पण कर नागों से सम्पूर्ण

वर्ष के लिए अपने तथा अपने परिवार के ऊपर अनुग्रह-कृपा करने के लिए अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है। नागों की प्रिय वस्तुएँ हैं—खीर, दूध, पंचामृत तथा कमल-फूल। कहा गया है कि इन प्रिय वस्तुओं के समर्पण के बाद अनन्त, वासुकि, शेष, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिया, तक्षक और पिंगल आदि नागों का आवाहन स्मरण कर पूजा होनी चाहिए। यों तो इन बारहों की पूजा चैत्र से प्रारम्भ होकर वर्ष भर होनी चाहिए। किन्तु यदि ऐसा सम्भव न हो तो वार्षिक पूजा के अवसर पर इन बारह नागों की पूजा विधेय है। नाग-पूजा के बाद दान का विधान है। दान में स्वर्ण एवं गोदान महत्त्वपूर्ण माना गया है। धर्मशास्त्रों में यह स्वयं वर्णित इस पूजा में नागों के लिए दुर्भावना का भाव कतई नहीं चाहिए। पूजा करने से नाग-पूजा करने वाले वर्ष भर सपरिवार नागभय से विमुक्त रहते हैं।

नाग-पंचमी विषयक एक लोक कथा इस प्रकार है—एक था किसान। उसके दो पुत्र थे—और उसकी एक कन्या थी। किसान एक दिन अपने खेत में हल चला रहा था। खेत में एक साँप का बिल था। धोखे से वह साँप का बिल खुद गया। फलस्वरूप उसमें साँपिन के तीन छोटे छोटे बच्चे मर गये। साँपिन तो भाग गई, किन्तु अपने बच्चों की हत्या के लिए किसान से बदला लेने की ठानी। वह रात में किसान के घर आई और किसान को, किसान-पत्नी को तथा किसान के दोनों पुत्रों को डस लिया। प्रातःकाल चारों के चारों मृत पाये गये। मात्र एक कन्या उस दिन वहाँ नहीं सोई थी बची रही। जब साँपिन को यह ज्ञात हुआ कि हत्यारे किसान की एक कन्या बच रही है तो दूसरे दिन रात में फिर पहुँची। जब उसने किसान कन्या को देखा तो वह क्रुद्ध हो उसे डँसने के लिए आगे बढ़ी। कन्या बेचारी ने जब साँपिन को उस भयंकरता में देखा तो वह प्रार्थना करने लगी और उसके आगे एक कटोरा जिसमें दूध था रख दिया। संयोग से उस दिन नाग पंचमी थी। नाग पंचमी सदा से नाग परिवार में सर्वाधिक पूज्य दिन होता है। साँपिन रुकी और कन्या की करुण प्रार्थना उसका आदर-सत्कार और नागपंचमी दिन का पुनीत प्रभाव इन सबसे प्रभावित हो वह अपने प्यारे शिशुओं के शोक भूल गई और उसने कन्या के माता-पिता तथा दोनों भाइयों का विष मुक्त कर दिया। नागपंचमी तब से दया करुणा-क्षमा की तिथि बनी हुई है।

नाग-पंचमी के सम्बन्ध में एक दूसरी लोक कथा इस प्रकार है—एक ब्राह्मण था। उसके सात पुत्र थे और सात बहुएँ। इन बहुओं में एक के नैहर में कोई नहीं था। जब सावन आया तो छः बहुएँ तो अपने नैहर गईं, किन्तु एक बेचारी कहाँ जाती, वह अपनी ससुराल ही रही। जब किसी ने उससे पूछा तो उसने

बताया मेरा नैहर तो शेष नाग है। जब यह बात शेष नाग को मालूम हुई तो वे बहू की करुण दशा पर द्रवित हो एक ब्राह्मण वेश धारण कर बहू के पास पहुँचे और उसके ससुराल वालों को विश्वास दिलाया कि वे नाते में चाचा होते हैं। इस प्रकार वे बहू को विदा करा कर नाग लोक ले गये। नाग-लोक पहुँच कर वहाँ के स्वर्गोपम सुखों में बहू का जीवन बड़े आनन्द से बीतने लगा। इस दरम्यान नाग के बच्चे हुए। संयोग से एक दिन दीपक गिर जाने से बच्चों की दुम कट गई। कुछ दिन बहू नैहर रह कर अपनी ससुराल लौट आई।

दिन बीतते चले और शेष नाग के बच्चे बड़े हुए। एक दिन उन बच्चों ने जब अपनी दुम कटने का वृत्तांत सुना तो बदला लेने के लिए बहू की ससुराल पहुँचे। उस दिन नागपंचमी थी। बहू नागों की प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा कर रही थी और अपने नाग-भाइयों के कल्याण के लिए प्रार्थना कर रही थी। नाग भाई अपनी अपनाई बहन को इस प्रकार देख कर आनन्द विह्वल हो उठे। उनका सारा क्रोध दूर हो गया। वे बहन से जाकर मिले। बहन ने दूध और लावा का उपहार दिया। जब नाग-भाई घर लौटने लगे तो उन्होंने बहू (बहन) को एक बहुमूल्य मणिमाला भेंट की। नाग-भाई घर गये और बहू मणिमाला के प्रभाव से बड़े आनन्द से रहने लगी।

शीतला सप्तमी

श्रावण मास की शुक्ला सप्तमी शीतला सप्तमी कही जाती है। शीतला के दिन देवी शीतला का, जो भगवती दुर्गा का ही एक रूप है, व्रत रखा जाता है और उनकी पूजा अर्चना होती है। यह लोक-विश्वास है कि देवी शीतला का प्रकोप माता (चेचक) के रूप में फूटता है। शीतला सप्तमी के दिन सौभाग्यवती संतानवती नारियाँ धन-जन-संतान सुख के लिए शीतला व्रत का श्रद्धा निष्ठा से अनुष्ठान करती हैं। कहना नहीं होगा कि इस व्रत के फलस्वरूप व्रती नारियों की कामना-इच्छा देवी कृपा से पूर्ण होती है एवं शोक-कष्ट-रोग-विपत्तियों का निराकरण होता है।

शीतला देवी की पूजा-पूजन-विधि में कहा गया है कि सप्तमी तिथि को सौभाग्यवती स्त्री शौच-स्नान आदि से निवृत्त हो हृदय-मन से शुद्ध-पवित्र होकर कलश-स्थापना कर व्रत पूर्ण होने की कल्पना कामना करे और फिर शीतला देवी की विधि विधान पूर्वक पूजा करे। पूजनोपरांत शीतला देवी के रूप

(शीतला देवी का वाहन खर है, उनके एक हाथ में झाड़ू तथा दूसरे में कलश तथा माथे पर सूप हैं। उनकी मुखाकृति भयानक, गंभीर क्रुद्ध और क्रूर हैं) का ध्यान करे तथा उनसे स्व कल्याण की याचना करे।

शीतला सप्तमी की माहात्म्य कथा इस प्रकार कही गई है—"पुराकाल में इन्द्रप्रस्थ के राजा इन्द्रद्युम्न अपनी राजधानी हस्तिनापुर में परोपकारिता तथा न्यायपरायणता के साथ सिंहासनस्थ थे। राजा की एक पुत्री थी और एक पुत्र था। समय आने पर राजकुमारी का विवाह कौडिन्य नगर के राजा के कुमार से हुआ। जब कन्या की विदाई का दिन आया, उस दिन शीतला सप्तमी की तिथि थी, विदाई निश्चित मुहूर्त पर होती तो शीतला व्रत की विधि अधूरी रह जाती और यदि व्रत पूर्ण होने पर विदाई की जाती तो मुहूर्त टल जाता। मर्यादा-रक्षा ने राजा को परेशानी में डाल दिया। किन्तु विचार-विमर्श के बाद राजाने व्रत-अनुष्ठान समाप्ति पर ही कन्या विदाई का निश्चय किया।

शीतला-व्रत का अनुष्ठान समाप्त हुआ। कन्या विदा कर दी गई। राजा ने कन्या के साथ अपने पुरोहित लगा दिया, क्योंकि विदा मुहूर्त शुभ नही था और राजा को विश्वास था कि पुरोहित के स्तुति-पाठ से मुहूर्त का कुप्रभाव शान्त हो जायगा। सबके सब चले। पुरोहित जी सपत्नीक थे। कुछ दूर जाने पर एक जंगल में सवारी रुकी। पुरोहितजी एक प्राचीन वट वृक्ष की छाया में थके-मादे होने के कारण सो गये। इधर राजकन्या अपनी सहेलियों के साथ देव पूजा के लिए एक मन्दिर में गई। पूजोपचार के बाद राजकन्या अपने स्थान पर लौटी। परन्तु यह क्या? पुरोहित जी को एक विषधर ने काट लिया था और इस दुनिया से कूच कर गये थे। बेचारी पुरोहितानी अपने पति की मृत्यु देख हाहाकार कर उठी और उसने पति के साथ सती होने का निश्चय किया। इधर राजकन्या के शोक की सीमा नहीं थी। पुरोहित की मृत्यु ने राजकन्या को इतना भयभीत किया कि वह अपार चिंतित हो गई। किन्तु उसने इसी अवस्था में देवी का ध्यान किया और शोक-विह्वल कंठ से देवी की प्रार्थना करने लगी। इस समय एक अभूत घटना घटी। एक वृद्धा स्त्री उपस्थित हुई और उसने राजकन्या को प्रेरित किया कि वह यदि अपने व्रत-पूजा-उपवास के फल पुरोहितानी को दे सके तो पुरोहित जी सकता है। राजकन्या ने सोत्साह अपना पुण्य फल पुरोहितानी को अर्पित किया। और फिर जैसा देवी ने कहा था-पुरोहित देवता जी उठे।

किन्तु विधि-विडम्बना का अन्त यही नही था। एक दूसरी आफत आ पहुँची। जहां वे लोग टिके थे, राजकुमार का दल वहां से जरा दूर दूसरी जगह टिका था। राजकुमारी जब वहां पहुँची तो मालूम हुआ कि राजकुमार एक विषधर के काट लेने के कारण मौत को प्राप्त हो चुके थे। अब तो चतुर्दिक्

कोलाहल मच गया। राजकुमारी ने सबके साथ प्राण देने का निश्चय किया। किन्तु मरने के पूर्व राजकुमारी ने पुनः देवी की आराधना की। पवित्र हृदय से राजकुमारी ने देवी से प्रार्थना की—मा, यदि मेरे जीवन के सभी पुण्य रिक्त हो चुके है और उसी के कारण मेरे पतिदेव मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, तो मुझे कोई शोक नही क्योकि मेरे पुण्य फल से पुरोहितानी के पति को प्राण दान मिला है। किन्तु यदि किन्ही और कारणों से यह हुआ है, तो मैं अपने को अभागनी मानती हूँ और पति के साथ सती होकर विपत्ति से जा मिलना चाहती हूँ। क्योकि मैं यह जानती हूँ कि पतिहीना नारी के लिए इस दुनिया में कही कोई ठौर नही है। एक बात और मेरे साथ मेरी तमाम सहेलियाँ भी जल मरने पर अड़ी हुई है। इसमे मेरा कोई दोष नही हैं, कारण ये मेरे मना करने पर भी अपनी बात पर अड़ी हुई है।

राजकुमारी की उपर्युक्त बातो से देवी का मन डोल गया। वे उसकी पति-प्रेम विषयक दृढ़ता से प्रसन्न हुई और उसी पूर्ववृद्धा के मुख से कहलाया—"राजकुमारी, पतिपरायणे, देवी का पुण्य व्रत करने वाली वैधव्य दुख नही उठाती है। तुम पति को आवाज दो, वह जीवित है देवी तुम पर बहुत-बहुत प्रसन्न है।" और राजकुमारी ने आवाज दी। उसका पति-राजकुमार जीवित हो उठा। राजकुमारी ने वृद्धा का बड़ा आदर-सत्कार किया। उसे भेंट-पूजा चढ़ाई। और सबने देखा वृद्धा (जो साक्षात् देवी थी) अन्तर्धान हो गई। राजकुमारी खुशी-खुशी सबके साथ ससुराल को चली।

रक्षा-बंधन

रक्षा-बंधन श्रावण पूर्णिमा को होता है। इसे कहीं-कहीं सलोनो या सलूनी भी कहते हैं। सलूनी का अर्थ है नया वर्ष। फसली का नया वर्ष सूनों से ही शुरू होता हैं। यही सलूनी श्रावणी या सलोनी पूर्णिमा भी कही जाती हैं।

यह पर्व कर्म, आयु और आरोग्य की वृद्धि के लिए है। पूर्णचन्द्र सुधानिधि होने के कारण आयु-आरोग्यदाता है। उस दिन श्रवण नक्षत्र का योग होता है। श्रवण नक्षत्र के देवता स्वयं विष्णु हैं जो जगतपालक हैं। पूर्णिमा तथा श्रवण नक्षत्र का योग केवल श्रावण में ही सम्भव होता है। यही कारण है कि उस दिन पर्व रक्षा-बंधन से चन्द्रमा और विष्णु की वर-कृपा की प्राप्ति होती है।

रक्षा-बन्धन के दिन घर को शुद्ध गोमय से लीप कर उसमें हल्दी आदि से चौक पूर कर उस पर जलपूर्ण कलश की स्थापना की जाती है और तब आसन पर बैठकर पुरोहित द्वारा

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे माचल माचल ॥

रक्षा-बन्धन किया जाता है। सागर तटवासी सागर स्नानोपरांत नारियल चढ़ाते हैं और राई और सरसों लाल कपड़े में बांधकर रेशम और सूत के धागे से राखी बनाकर सीधी कलाई पर बांधते हैं। सुश्रुत में लिखा है कि वैद्य रोगी को शस्त्र प्रयोग कर पीछे उसकी रक्षा के लिए रक्षामंत्र का पाठ करते हुए चारों ओर जल का छींटा देता है। यह रक्षा कर्म कुरया देवता और नक्षत्रों के भय से बचाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार मन्त्र पाठकर रक्षा विधान करने से राक्षस, भूत-प्रेत आदि का डर जाता रहता है।

रक्षा-बन्धन या राखी बन्धन आज भी कुछ राज्यों में बड़े उत्साह आदर-प्रेम और पवित्रता से मनाते हुए देखा जाता है। विशेषकर उत्तर प्रदेश और राजस्थान में इसका बड़ा महत्त्व है। लोगों का विश्वास है कि श्रावणी पौर्णमासी या संक्रान्ति तिथि में राखी बन्धन करने से कुग्रह का प्रभाव क्षीण हो जाता है। इस राखी बन्धन की व्यवस्था महर्षि दुर्वासा ने श्रावण की अधिष्ठात्री देवी की ग्रहदृष्टि निवारणार्थ दी थी। इस तिथि पर श्रीकृष्ण का रक्षा-बन्धन अनिष्टनाश के लिए हुआ था। विधिपूर्वक रक्षा-बन्धन करने वाले सर्वपापरहित हो सुख से वास करते हैं—यह शास्त्रोक्त है। इन्द्र को बृहस्पति और इन्द्राणी ने, श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन रक्षा विधान किया था—इसका उल्लेख रक्षा बन्धन कथा में मिलता है। राजस्थान में राजपूत कुल ललना, कुल पुरोहित और ब्राह्मण रक्षा-बंधन करते हैं। राजमहिषियां उस दिन अपनी-अपनी सहचरी अथवा कुल पुरोहित के हाथ अपने-अपने भाई अथवा उनके निकट जिन्हें वे भाई कहकर पुकारती हैं राखी भेजती हैं। इसी राखी के भेजने से महाराणा राजसिंह रूपनगर की राजकुमारी का उद्धार करने के लिए सम्राट् औरंगजेब के विरुद्ध रणक्षेत्र में कूद पड़े थे। कोई भी रमणी अगर किसी वीर के पास उसे भाई को राखी भेजती है वह अपनी उस बहन के लिए उसके धन, प्राण और मान की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देता है। इस प्रथा ने भारतीय एकता के गौरव में चार-चांद लगाये हैं। इस प्रथा का बड़ा उदात्त वर्णन कर्नल टाड ने किया है। उसके अनुसार ललनाओं का यह पर्व महान् राष्ट्रीय पर्व है।

रक्षा-बन्धन, विजयादशमी, दीपावली और होली भारत के राष्ट्रीय पर्व हैं। जिस समय भारतीय समाज चार भागों में विभक्त था। ये चारों पर्व क्रमशः

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के थे। रक्षाबन्धन समय समाज की शुभाकांक्षा से ब्राह्मणों का कर्त्तव्य पर्व था।

भारतवर्ष किसानों का गरीबों का देश है। हमारी विशाल जनसंख्या कच्चे झोपड़ों के उन गाँवों में रहती हैं जहाँ सड़कें नहीं हैं, सफाई नहीं। इन गाँवों की दशा वर्षा में जब चारों ओर पानी छा जाता है, छप्परों से पानी चूता है, कीचड़ और पानी सड़-गलकर महकने लगते हैं, बड़ी दर्दनाक हो जाती है। चारों ओर से रोगों की चढ़ाई हो जाती है। तब वे लाचार ग्रामीण प्रार्थना और स्वच्छता पर विश्वास कर अपने ध्येय की पूर्ति के लिए रोगों से मुक्ति के लिए रक्षाबन्धन का त्योहार उत्साह, उल्लास और कामना से मनाते हैं। रक्षा-बन्धन कर्म में भूमि लेपन के लिए जिस गोमय का उपयोग होता है उससे रोग के कीटाणुओं का नाश होता है। चौक पूरने में जो हल्दी या रोली काम में आती है वह मांगलिक और सौन्दर्यदायक तो है ही कीटाणु नाशक भी है। इस अव-सर पर जलपूर्ण कलश की स्थापना में मांगलिकता—हम सदा से इसे मंगल और शुभ मानते आ रहे हैं—तो है ही, यह वरुण देवता का प्रतीक है। वरुण देवता वेदों के अनुसार बंधन नाशक माने जाते हैं। वे हमारे ऊपर-नीचे और बीच में जो पाश हैं उन्हें ढीले कर देते हैं। ऐसा करने पर हम बन्धन मुक्त हो दीनता की निवृत्ति के लिए उनकी परिचर्या में तत्पर हो जाते हैं। रक्षा-बन्धन में जल-पूर्ण कलश की पूजा का विधान मृत्यु पाश से छूटने तथा दीनता से मुक्त होने के लिए ही है। कलश पूजन के बाद रक्षा सूत्र-बन्धन की विधि है। इस सूत्र के बन्धन का रहस्य यह है कि सूत्र या तन्तु किसी चीज को अविच्छिन्न करने वाली वस्तु है। संक्षेप में यह कि आयु आरोग्य की अविच्छिन्नता के लिए रक्षा बन्धन का विधान है।

रक्षा-बन्धन विधान से कृषि और किसान का बड़ा सम्बन्ध है। श्रावण के अन्तिम दिन किसान डरता है कि भादों के आते ही रोगों का जो कृषि और किसान दोनों के लिए है, आगम होगा। इससे बचने के लिए वे विद्वान् त्यागी ब्राह्मण से उपाय पूछने और आशीर्वाद लेने जाते हैं। जाते समय वे भेंट के लिए कपास या गूलर साथ ले लेते हैं। पंडित गूलर तोड़ कर रुई को परीना तार बाँट कर करता है। उस बँटे तागे में वह दो-चार गूलर भी थीर देता है और मंत्र पढ़कर किसान को आशीर्वाद देता है कि परमात्मा उसकी कृषि की रक्षा करे। इस प्रकार तैयार रक्षा-बंधन कलाई पर बाँधा जाता है। वही रक्षा-बन्धन बच्चों की कलाई पर भी बाँधा जाता है। इस अवसर पर ब्राह्मणों का सत्कार भोजन से किया जाता है। भोजन के लिए दूध में बनी सेवई खिलाने का विधान है। इस सेवई का भी रहस्य है। सेवई आँटे की बनती है। आटा माड़-

कर बारीक तार काट कर उलटे घड़े पर सुखाया जाता है। सुखाते समय कुछ टुकड़े जमीन पर गिर जाते हैं जिन्हें पक्षी चुन-चुन कर खाते हैं। चुनते समय वे उसी प्रकार के कीड़ों को भी खा लेते हैं। इसके फलस्वरूप अर्थात् कीड़ो से रोग कीट से मुक्ति मिल जाती है। ब्राह्मण भोजन का पुण्य उन्हें आयु, स्वास्थ्य और स्वच्छता के रूप में मिलता हैं।

वर्षा के ही दिनों मे जब चारों ओर हरियाली छा जाती है किसान बच्चे उस दृश्य को भीतो पर लिखते बनाते है। गेरु का लाल रंग पिंडोल की सफेदी पर जब कि पिंडोल पीली मिट्टी पर पोता जाता है बड़ा चमकता है। गोबर, मिट्टी, पिंडोल और गेरु चर्म रोगों के लिए दवा है। फलत. बालक चित्रकारी सीखने के साथ-साथ रोगों से मुक्ति पाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि रक्षा बन्धन से सब ओर रक्षा ही रक्षा हैं। हम एकत्र होकर परमात्मा का भजन करते हैं। पडितों को दान देते है। वेद पाठ करते हैं और कथा सुनते हैं। सक्षेप में रक्षा-बन्धन से स्वरक्षा और स्वमंगल के साथ पररक्षा और परमंगल ही नहीं सर्वरक्षा और सर्वमंगल करते हैं।

कजरी पूर्णिमा

श्रावण मास की पूर्णिमा कजली या कजरी पूर्णिमा कही जाती है। इस शुभ अवसर पर गेहूँ, धान अथवा जौ घर के भीतर उगाया जाता है, जिसे कजरी कहते हैं। इसमें धूप नही लगने के कारण इसका रंग पीला पड़ जाता है। जिस घर में कजरी उगाई जाती है, उसकी भीत पर शिशु समेत एक पलना, एक बिज्जी का बच्चा तथा एक स्त्री का रूप हल्दी से अकित किया जाता है। सध्या काल में धूप-दीप के साथ आरती उतारी जाती है। बाद मे कथा सुनी जाती है तथा कजरी (गीत) गाई जाती है।

कजरी पूरे देश का एक प्रसिद्ध त्योहार है। उस तिथि पर श्रावणी कर्म होता है तथा रक्षा-बन्धन की भी वही तिथि श्रावणी पूर्णिमा है। उस दिन कही-कही कजरी जुलूस निकाला जाता है, सत्पात्रों को भोजन कराकर उन्हें दान-दक्षिणा दी जाती है। इस अवसर पर कही जाने वाली कथायें स्थान-भेद से पृथक्-पृथक् होती हैं। कजरी का अन्य नाम हरिकाली भी है।

कजरी सम्बन्धी एक कथा इस प्रकार है—एक सन्तानहीना थी। उसने एक बिज्जी के बच्चे को जो मातृ-विहीन था, पाल रखा था। वह उस बच्चे का

लालन-पालन पुत्रवत् करती थी। दैवयोग से अपने किसी पुण्य के फलस्वरूप वह सन्तानहीना गर्भवती हुई और यथासमय एक सुन्दर बालक का जन्म हुआ। उस स्त्री ने दोनों बच्चों को समान लाड़-प्यार से रखा। वे दोनों भी भाई-भाई की तरह रहने लगे।

उस दिन श्रावण शुक्ल नवमी थी। स्त्री बाहर जल लाने गयी थी। बच्चा सो रहा था। बिज्जी का बच्चा अपने भाई की रखवाली कर रहा था। इसी समय एक काला नाग सोये बच्चे की ओर काटने के लिए बढ़ा। किन्तु बिज्जी के बच्चे ने चट से नाग का काम तमाम किया। इसी समय बच्चे की माँ जल भरा घड़ा लेकर आ पहुँची। बिज्जी का बच्चा जिसने अभी-अभी अपने भाई को काला नाग से बचाया था आनन्द से चहचहाने लगा। उस स्त्री ने बिज्जी के बच्चे का रक्तरंजित मुँह देखकर समझा कि उसने उसके बच्चे को काट खाया है। क्रोध और हताशा में उसने पानी भरा घड़ा उसके माथे पर दे मारा। वह बिज्जी का बच्चा तत्काल मर गया। जब वह स्त्री बच्चे के पालने के पास आई तो उसने देखा बच्चा किलकिला रहा है और उसके पास एक काला नाग रक्त-रंजित टुकड़ों में कटा मरा पड़ा है। स्त्री अपनी मूर्खता पर जोर-जोर से रोने लगी और दिन भर रोती रही। दोपहर बाद जब पास-पड़ोस की पूजा व्रत करने वाली स्त्रियाँ आयी तो सबने उसको साहस दिलाया और कहा कि हम सभी लोग व्रत रखते हुए इसकी भी प्रतिमा बनाकर पूजा करेंगी। निदान सध्या समय सबने पूजा की आराधना की। यह व्रत तब से आ रहा है।

एक और कथा—पुराणों में कजरी-हरिकाली देवी का प्रसंग इस प्रकार है—एक बार धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान श्री कृष्ण से पूछा—"ये हरिकाली देवी कौन है? और इनकी पूजा से क्या फल मिलता है?" भगवान् श्री कृष्ण बोले—"एक बार देव सभा में भगवान् शंकर ने महाकाली के काले रंग पर व्यंग्य किया तथा उसे काजल के समान काली कहा। महाकाली जी को शंकरजी की यह बात पसन्द न आई। उन्होंने अपने शरीर को भस्म कर डाला। बाद में वही महाकाली अपूर्व सुन्दरी पार्वती के रूप में हिमवान की पुत्री हुई। वही तिपूर्णाशस्यश्यामला हरिकाली भगवान् शंकर की अर्द्धाङ्गिनी हुई और लोक-ल्याण के लिए तथा समस्त स्त्री समाज को सौभाग्यशालिनी बनाने के लिए त पावन पुनीत अवसर पर व्रत पर्व के साथ अद्य पर्यन्त पूजी जाती रही हैं।

बिहुला चतुर्थी

भाद्र मास की कृष्णा चतुर्थी को बिहुला चतुर्थी का व्रत सम्पन्न होता है। यह व्रत पुत्रवती स्त्रियां ही रखती हैं।

बिहुला चतुर्थी व्रत का सम्बन्ध बिहुला, बहुला या बिपुला से है। बिहुला एक सती रमणी थी। इस व्रत का सम्बन्ध बहुला नाम्नी सत्यपरायणा एक गाय से भी जोड़ा जाता है।

बिहुला चतुर्थी के दिन दिन भर व्रत रखने के बाद सांध्य वेला में सती बिहुला तथा सवत्सा गाय की पूजा की जाती है। पपड़ी का भोग लगाया जाता है एवं पूजा समाप्ति के बाद कथायें कही-सुनी जाती हैं।

सती बिहुला की कथा इस प्रकार है—पुराकाल में शिव पार्वती का एक अनन्य भक्त था, चन्द्रधर। उसकी पत्नी बड़ी साध्वी और पतिपरायणा थी। उनके पुत्र खूब होनहार थे तथा पुत्र-वधुएं बड़ी कर्त्तव्य परायणा थी। चन्द्रधर-जी एक बड़ा सौदागर एक बार अपनी-अपनी वाणिज्य यात्रा से बहुत दिनों तक नही लौटा। उसकी पत्नी बड़ी चिंतित हुई और उसने शिव और पार्वती की मनौतियां मानी। उसने मनसा देवी नाम की अन्य देवी की भी मनौती मानी। ईश्वरेच्छा से मनसा देवी के पूजनोपरान्त ही उसका पति चन्द्रधर अपार संपत्ति के साथ घर लौटा।

चन्द्रधर के सकुशल घर लौटने पर उसकी पत्नी ने सिद्धिदायिनी मनसा-देवी में अत्यन्त आस्था और विश्वास जम गये। वह अपने पति से छिपाकर चुप-चुप मनसादेवी की पूजा करती रही। चन्द्रधर कट्टर शैव होने के कारण यह नही चाहता था कि उसकी पत्नी किसी अन्य देवी-देवता की पूजा करे। दुःसंयोग से एक दिन चन्द्रधर ने अपनी पत्नी को मनसा देवी की पूजा करते देख लिया। वह क्रोध में आ गया और उसने अपनी पत्नी को तो बुरा-भला कहा ही, उसने मनसादेवी की तमाम सामग्री नष्ट-भ्रष्ट कर बाहर डलवा दिया। मनसादेवी का यह तिरस्कार चन्द्रधर के लिए बड़ा महंगा पड़ा। उसके सभी पुत्र वर्ष भर के भीतर ही सांप काटने से मर गये। फिर भी उसने अपनी पत्नी को मनसादेवी की पूजा करने की आज्ञा नही दी। पुत्रहीन निराश हताश चन्द्रधर घर में मन नहीं लगने के कारण विदेश यात्रा पर चला। किन्तु चलते-चलते उसने पत्नी को हिदायत दी कि वह शिव-पार्वती के सिवा और किसी देवी-देवता की पूजा भूल से न करे।

व्यापार-यात्रा चन्द्रधर पर बड़ी विपत्ति आई। मनसा देवी के कोप से वह भयंकर आंधी-तूफान में पड़ गया। उसका बेड़ा गर्द हो गया। उसके सभी संगी-

ही घी काम में लाया जाता है। सब कुछ होने के बाद कथा कही जाती है जिसे बड़े ध्यान और श्रद्धा से सुना जाता है।

हल षष्ठी सम्बन्धी पहली कथा यों है—एक ग्वालिन थी। वह गर्भवती हुई। कुछ दिनों बाद उसके पेट में दर्द शुरू हुआ। किन्तु उसी समय उसे दूध बेचने के लिए भी जाना था। वह पेट दर्द की अवहेलना कर दूध बेचने चली। रास्ते में पेट दर्द बढ़ गया। वह खेत में रुकी, वहीं बच्चा पैदा हुआ। उसने दूध बेचने के लिए जाना आवश्यक समझा। अतः बच्चे को घास-फूस में घाप-तोप कर वह दूध बेचने के लिए पास के गाँव में पहुँच गई। वहाँ से उसने भैंस गाय का मिला दूध गाय का दूध कह कर बेच दिया। उधर वह दूध बेचने वाली गाय भैंस के मिले दूध को गाय का दूध कह कर बेच रही थी और इधर एक दर्दनाक दुर्घटना हो गई। जिस खेत में घास-फूस में बच्चा छिपा रखा था, उस खेत में किसान हल चला रहा था। धोखे से फल की नोक बच्चे को लगी और वह मर गया। जब दूध बेचने वाली दूध बेचकर लौटी तो वह बच्चे को मरा पाकर हाहाकार कर उठी। उसे विश्वास हो गया यह उसके पाप का दूध बेचने में धोखा देने का फल है। वह पाप को स्वीकार करने के लिए गाँव दौड़ गई और वहाँ जाकर उसने सच्ची बातें साफ-साफ बतला दी। उसके इस प्रायश्चित्त पर सब स्त्रियों ने जो व्रती थी अनेकानेक आशीर्वाद दिये और जब वह लौट कर पुनः खेत पर आई तो उसने पाया कि उसका पुत्र जो गया है और वह प्रसन्न हो किलकिला रहा है। उस दूधवाली ने सकल्प किया कि वह आजन्म कभी किसी को किसी प्रकार का धोखा नहीं देगी।

एतद्विषयक एक दूसरी कथा इस प्रकार है—सलोनी और तारा नाम की दो स्त्रियाँ थी। सलोनी देवरानी थी और तारा जेठानी। सलोनी सुन्दर थी, सदाचारिणी थी और दयावती थी। किन्तु तारा दुष्टा थी दयाहीना थी।

एक बार दोनो ने हरछठ व्रत रखा। दोनों ने खीर बनाई और थोड़ी देर आराम करने लगी। इस बीच दो कुत्ते आये और खीर खाने लगे। सलोनी ने कुत्ते को खीर खाते देखा पर कुछ कहा नहीं। उसने बची-बचाई खीर भी उसी को खिला दी। इधर तारा ने खीर खाने वाले कुत्ते को इतना मारा कि उसकी कमर ही टूट गई। कुछ देर बाद जब दोनों कुत्ते मिले तो सलोनी की खीर खाने वाले कुत्ते ने कहा कि सलोनी इतनी अच्छी है कि मैं मरने के बाद उसी का पुत्र होकर जन्म लेना चाहता हूँ। किन्तु तारा की खीर खाने वाला कुत्ता बोला कि मैं मरने के बाद उसका पुत्र बनना इसलिए चाहता हूँ कि उससे बदला लेना चाहता हूँ।

दैवात् तारा वाला कुत्ता मरने के बाद उसका पुत्र बनकर जन्मा। उस वर्ष जब कि हरछठ के अवसर पर घर-घर पूजा हो रही थी, तारा का लड़का मर

गया। तारा बहुत दुखी हुई। किन्तु चारा ही क्या था। हर वर्ष हरछठ के अवसर पर तारा को लड़का होता था और मर जाता था। तारा बहुत चिंतित हुई। उसने एक रात सपने में देखा कि वही कुत्ता जिसको उसने मारा था कह रहा है—"मैं तुम्हारा लड़का हूँ जो बार-बार मर जाता है। तुमने जो दुष्टता की थी मैं उसी का बदला ले रहा हूँ।" तारा बोली—"तो मैं अब तुम्हारी प्रसन्नता के लिए क्या करूँ?" कुत्ता बोला तुम हरछठ व्रत नियम पूर्वक करो तो मैं तुम्हारे यहाँ रहूँगा। तारा ने वैसा ही किया और फलस्वरूप उसके पुत्र जीने लगे।

कृष्णाष्टमी

कृष्ण का नाम ऋग्वेद में आया है। किन्तु वहाँ वे कोई बड़े देवता नहीं हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण देवकी के पुत्र कहे गये हैं। वे बहुत बड़े विद्वान् थे। कृष्ण नाम के एक महर्षि हैं। वे विश्व के पुत्र थे। कृष्ण नाम का एक विकराल राक्षस था। उसके दस हजार सहायक थे। वह बड़ा ही दुष्ट था। इन्द्र ने उसकी हत्या की। एक दूसरी वैदिक ऋचा में पचास हजार कृष्णों के मारे जाने का उल्लेख है। एक अन्य ऋचा में यह कहा गया है कि कृष्ण के साथ उनकी तमाम गर्भवती स्त्रियों की हत्या कर दी गयी ताकि बाद में कोई बच्चा पैदा न हो।

भारतीय कथा के कृष्ण बहुत बड़े वीर हैं। वे सर्वप्रिय देवता हैं। वे विष्णु के आठवें अवतार हैं। संभवतः इन अवतारी कृष्ण का काल महाकाव्य युग था। इन कृष्ण का महाभारत में बड़ी प्रधानता से उल्लेख है। इसमें कृष्ण को एक बड़े रहस्यात्मक रूप में देखा गया है। तरह-तरह के वर्णन और नाना प्रकार की कथाओं ने कृष्ण को भगवान् बना दिया है, वे भगवान् जिन्होंने अर्जुन को गीता का सन्देश दिया। कृष्ण का यह भगवत्-रूप हरिवंश तथा अन्य पुराणों में बड़ी विशदता के साथ वर्णित है। कृष्ण की बोल-चाल, उनका किशोर कौशल, उनकी यौवनमस्ती एवं उनके रंगीन जीवन की अनेक कथाएँ भागवत पुराण में भरी हुई हैं। कृष्ण जीवन की इन कथाओं का प्रचार एवं प्रसार इस पुराण और इसी के हिन्दी अनुवाद प्रेमसागर तथा इस तरह के अन्य ग्रन्थों से खूब ही हुआ है।

कृष्ण यादव वंश के थे। यादव यमुना के दोनों तटों पर वृन्दावन और गोकुल में बसे थे। उन दिनों भोजों का राजा कंस वृन्दावन के पास मथुरा में

राज्य करता था। कंस ने यह राज्य अपने पिता उग्रसेन को गद्दी से उतार कर हथियाया था। राजा उग्रसेन का एक भाई था देवक। इनकी बहन थी देवकी। देवकी का विवाह सूरपुत्र वसुदेव से, जो यदुवंशी थे, हुआ था। महाभारत और विष्णु पुराण में कृष्ण-जन्म-कथा का उल्लेख है। कहा गया है कि विष्णु भगवान् ने अपने दो केश तोड़े—श्वेत और श्याम। श्वेत केश से रोहिणी के पेट से बलराम का और श्याम केश से देवकी के पेट से कृष्ण का जन्म हुआ। कृष्ण का रंग श्याम (काला) होने के कारण कृष्ण नाम पड़ा और केश से होने के कारण केशव। कृष्ण के पिता वसुदेव की बहन थी कुन्ती। कुन्ती राजा पांडु की पत्नी हुई। इसीलिए कुन्ती के पुत्र पांडव और कृष्ण ममेरे फुफेरे भाई थे।

महाभारत में कृष्ण की वीरता की कितनी ही कथाएँ वर्णित हैं। कृष्ण ने हय, दानव, प्रलम्ब, नरक, जम्भपीठि एवं पुरुनाम्नी कितने ही असुरों को यमलोक पठाया था। उन्होंने कंस को, जिसका सहायक जरासंध था, गद्दी से उतारा था और उसकी हत्या की। उन्होंने कंस के भाई सुनामन को जो सूरसेन का राजा था, मारा था। उन्होंने स्वयंवर में गाधार राजकी दुहिता को जीता था। उन्होंने जरासंध और शिशुपाल को सुरलोक भेजा था। उन्होंने दैत्य नगरी, सौम्यका, जो वायु-स्थित थी, विनाश किया था। उन्होंने वरुण पर विजय पाई थी और पाताल में पंचजन से पाचजन्य शंख छीना था। अर्जुन के साथ उन्होंने खाण्डववन दाह किया था और सुदर्शन चक्र की प्राप्ति की थी। वरुड पर चढ़ कर उन्होंने इन्द्रपुरी को भयभीत किया था और वहाँ से पारिजात ले आये थे।

महाभारत की कथा से पता चलता है कि द्रौपदी के स्वयंवर में कृष्ण उपस्थित थे और उन्होंने ही यह निर्णय घोषित किया था कि अर्जुन ने द्रौपदी को प्राप्त किया है। जिस समय पांडव इन्द्रप्रस्थ में थे कृष्ण उनसे मिले थे, वहीं से वे पांडव के साथ मगध के लिए गये थे और अग्नि का साथ लेकर खांडव का दाहकर चक्र और गदा (कौमोदिक) प्राप्त की थी। बाद में अर्जुन कृष्ण के साथ द्वारका गया। वहाँ अर्जुन का बड़ा स्वागत सत्कार हुआ। वहाँ कृष्ण की, सलाह से अर्जुन ने सुभद्रा का (कृष्ण बलराम की बहन) हरण किया था। इस घटना पर बलराम को बड़ा क्रोध आया था।

जब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ ठाना तो कृष्ण ने मगध के राजा जरासंध के हराने की बात उठाई। जरासंध मारा गया और इस प्रकार अपने, शत्रु से (जरासंध की चढ़ाइयों से ऊब कर कृष्ण मथुरा छोड़ द्वारका जा बसे थे) बदला चुकाया। इसी युद्ध के अवसर पर कृष्ण ने अपने दूसरे शत्रु शिशुपाल का सिर अपने प्रसिद्ध चक्र से उतारा था।

कृष्ण युधिष्ठिर और दुर्योधन की द्यूतक्रीड़ा के समय उपस्थित थे और जब दुःशासन द्रौपदी का चीर हरण कर रहा था तब उन्होंने चीर बढ़ा कर द्रौपदी की लाज बचाई थी। पांडवों की वनवास-समाप्ति के बाद कृष्ण ने शांतिपूर्ण समझौते के लिए भारी प्रयत्न किया था। बाद में वे द्वारका चले आये। जब दुर्योधन और अर्जुन उनकी सहायता के लिए द्वारका पहुँचे तब उन्होंने एक को निज को और दूसरे को अपनी सेना देने की बात कही। अर्जुन ने कृष्ण को लेना स्वीकारा। कृष्ण अर्जुन के सारथी बने। युद्ध के प्रारम्भ में जब अर्जुन हतप्रभ और निराश हो रहा था, कृष्ण ने उसे अपनी गीतावाणी से ज्ञान दिया। उन्होंने पांडवों को अच्छे विचार और मन्त्र दिये। केवल दो अवसरों पर उन्होने अनौचित्य कराया—द्रोण की हत्या के लिए युधिष्ठिर से असत्य भाषण कराया और दुर्योधन को मारने के लिए भीम से अन्यायपूर्ण गदा-प्रयोग कराया।

महाभारत विजय के बाद कृष्ण विजेता पाण्डवों के साथ हस्तिनापुर आये और अश्वमेध यज्ञ में साथ हुए। बाद में द्वारका लौटे। द्वारका में उन्होंने मद्यपान निषेध कराया। इस निषेधाज्ञा से वहां अशान्ति फैली। कृष्ण ने लोगो को प्रभास क्षेत्र जाकर देवपूजा के लिए कहा और साथ ही एक दिन मद्यपान करने की भी छूट दी। मद्यपान के फलस्वरूप बड़ी लड़ाई छिड़ गई और कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न के साथ प्रायः सभी यादव वीर कृष्ण के समक्ष मारे गये। भग्नहृदय बलराम एक तरु छाया में स्वर्ग सिधार गये। और कृष्ण को एक व्याधने मृग के धोखे मे अपने तीर से मार डाला। समाचार पाकर अर्जुन द्वारका गये और कृष्ण का श्राद्ध किया। कुछ ही दिनों बाद सागर में बाढ आई और सारी द्वारका सागर के पेट में समा गयी। कृष्ण की पांच विधवा स्त्री कुरुक्षेत्र में चिता में भस्म हो गयी।

पुराणों में कृष्ण के बाल चरित्र का बड़ा विशद वर्णन है। यह शत-शत कथाओं का भंडार है। भागवत पुराण इस वर्णन में सबसे आगे है। संक्षेप में यह भागवत कथा यों है—

ऋषि ने भविष्यवाणी की थी कि कंस की हत्या उसका भानजा देवकी पुत्र करेगा। इस खतरे को दूर करने के लिए कंस ने देवकी को कारागार में डाल दिया। उसने समय समय पर होने वाली देवकी की छः सन्तान को विनष्ट कर दिया। जब सातवी सन्तान (विष्णु अवतार) गर्भ में आई तब एक परिवर्तन हुआ। उसका जन्म देवकी के पेट से न होकर वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ से हुआ। यह पुत्र बलराम था। बाद में देवकी को आठवी सन्तान पेट में आई। जब उसका जन्म हुआ उसका रंग काला था। इसीलिए वह कृष्ण कहलाया। उसके बाल कुछ अजब से घुंघराले थे—फलतः वह श्रीवत्स कहलाया।

इस सन्तान की रक्षा के लिए देवगण कृतसंकल्प थे। जब जन्म हुआ—सारे द्वारपाल सो रहे थे, सभी द्वार अपने आप खुल गये। वसुदेव उस शिशु को लेकर मथुरा से यमुना पार चले आये। वहाँ उसी रात नन्द की पत्नी यशोदा को एक बालिका पैदा हुई थी। वसुदेव चुपचाप बच्ची को बच्चे से बदल देवकी के पास आ गये। बाद में जब कंस को मालूम हुआ कि उसके साथ छल किया गया है तो उसने क्रोध में आकर उस दिन जनमने वाले सब बच्चों को मार डालने की आज्ञा दी। उस लोमहर्षक हत्या की आज्ञा सुन कर नन्द नवजात शिशु के साथ यशोदा, रोहिणी और बलराम को लेकर गोकुल भाग आये। गोकुल में कृष्ण का लालन-पालन बड़े भ्राता बलराम के साथ हुआ। ज्यों-ज्यों वे बड़े हुए त्यों-त्यों उनकी वीरता की कथा चतुर्दिक् फैलती चली। इधर कंस कृष्ण की हत्या की योजना बनाता रहा। कंस ने पूतना राक्षसी को कृष्ण को दूध पिलाने के लिए भेजा, व— कृष्ण द्वारा मारी गयी। बाद में खूंखार राक्षस तृणावर्त भेजा गया। वह भी हड्डी-पसली तुड़ा कर कृष्ण द्वारा यमलोक पठाया गया। एक दिन कृष्ण खेल-खेल में मटका फोड़ कर दूध और मक्खन खा गये। यशोदा ने क्रोधित होकर उन्हें ओखली में रस्सी से बाँध दिया। कृष्ण ओखली को घसीट कर दो वृक्षों के बीच ले गये। दोनों वृक्ष उखड़ गये। वृक्ष के रूप में अभिशापित यमलार्जुन का उद्धार हुआ। इस घटना से कृष्ण का नाम दामोदर पड़ा। उन्होंने यमुना के कालिय नाग का दमन किया। उन्होंने इन्द्र की अवहेलना कर गोवर्धन की पूजा कराई। जब इन्द्र के मेघ अपनी वर्षा से कृष्ण सहित सब लोगों को बहा ले जाने लगे तब कृष्ण ने अपनी कानी अंगुली पर गोवर्धन को उठाकर सबकी रक्षा करायी। कृष्ण गिरिधर गोवर्द्धन धर कहलाये। अपने लोगों की रक्षा करने के कारण इन्द्र ने कृष्ण को उपेन्द्र नाम दिया।

धीरे-धीरे कृष्ण यौवन में पधारे। गोपियाँ उन पर मुग्ध थीं। उन्होंने सात-आठ रमणियों का पाणिग्रहण किया। इनमें राधा सर्वप्रथम और प्रधान थी। जीवन के इसी काल में मनोरंजन के लिए उन्होंने एक चक्र-नृत्य का आविष्कार किया। यह नृत्य मंडल नृत्य था जो रास या रासलीला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस नृत्य में कृष्ण और राधा बीच में होते थे और गोपियाँ चारों ओर। किन्तु कृष्ण के इस आनन्दमय जीवन में कंस की दुष्टता से व्यतिक्रम हुआ। उसने अरिष्ट नामक वृषभ और केशिन नामक अश्व को कृष्ण को मारने के लिए भेजा। ये दोनों कृष्ण द्वारा मारे गये। बाद में कंस ने अक्रूर को भेजा। अक्रूर उत्सव देखने के बहाने बलराम और कृष्ण को मथुरा ले गये। मथुरा पहुँचने पर इनकी लड़ाई कंस के धोबियों से हुई। वे सबके सब मारे गये। मथुरा में कृष्ण की भेंट कुब्जा से हुई। उन्होंने उसका उद्धार किया। कृष्ण ने कंस के

योद्धा चाणूर को मल्लयुद्ध में पछाड़ा। और अन्त में कंस को मार कर उग्रसेन को गद्दी पर बैठाया।

कृष्ण ने मथुरा में रहकर संदीपन की देखरेख में धनुर्विद्या का अध्ययन किया। उन्होंने कंस द्वारा मारे अपने छः भाइयों का उद्धार किया जो मातृ दुग्ध दान कर स्वर्गवासी हुए। उसी समय उन्होंने शंखासुर पंचजन की हत्या की। कंस की दो पत्नियाँ मगध के राजा जरासंध की बहन थीं। जरासंध ने कृष्ण-रक्षित मथुरा पर अट्ठारह बार चढ़ाई की। किन्तु बार-बार उसे हार खानी पड़ी। इसी समय कृष्ण को काल यमन से सामना करना पड़ा। अब तक वे बहुत ही शक्तिहीन हो गये थे। उनको ऐसा लगा कि वे दोनों में से किसी से अवश्य हार जायेंगे। फलतः अपने लोगों को साथ ले वे मथुरा छोड़ गुजरात आ गये। वहाँ उन्होंने द्वारका की स्थापना की।

द्वारका में रहते हुए उन्होंने विदर्भ राजा की दुहिता रुक्मिणी का जिसका विवाह शिशुपाल से होना निश्चित हुआ था हरण किया और उससे विवाह किया। यहीं उन्होंने स्यमंतक मणिकी प्राप्त की। उन्होंने सत्राजित की पुत्री सत्यभामा तथा जाम्बवान की बेटी जाम्बवती से ब्याह किया। किन्तु उनकी पत्नियों की संख्या अपार थी। इनकी संख्या सोलह हजार एक सौ आठ से भी अधिक थी। उनके एक लाख अस्सी हजार पुत्र थे। रुक्मिणी की दो सन्तान थी प्रद्युम्न नामक पुत्र और चारुमती नाम्नी पुत्री। जाम्बवती का एक पुत्र था साम्ब और सत्यभामा के दस पुत्र थे।

द्वारका में ही रहते हुए इन्द्र कृष्ण के पास आये। उन्होंने कृष्ण से नरकासुर वध का आग्रह किया। कृष्ण ने दुर्धर असुराधिप नरक की हत्या की। बाद में कृष्ण इन्द्र के साथ इन्द्रपुरी गये। उनके साथ उनकी पत्नी सत्यभामा भी थी। इन्द्र के आदर-सत्कार से लौटती हुई सत्यभामा समुद्र मंथन से प्राप्त पारिजात तरु साथ ले आई। यह तरु इन्द्रपत्नी शची को बड़ा प्यारा था। उसने इन्द्र से शिकायत की। इन्द्र सेना लेकर आए, किन्तु उन्हें कृष्ण से हार खानी पड़ी।

कृष्ण का पुत्र था प्रद्युम्न और प्रद्युम्न का अनिरुद्ध। अनिरुद्ध को बाणासुर की पुत्री उषा प्यार करती थी। उसने अनिरुद्ध को उठा मंगवाया। अनिरुद्ध के उद्धार के लिए बलराम कृष्ण और प्रद्युम्न सैन्य नगरी पहुँचे। बाणासुर बड़ा भारी शिव भक्त था। उसकी सहायता में शिव और स्कन्द रहते थे। [illegible] का घोर युद्ध हुआ। कृष्ण ने अपने बाण में शिव को बाँधा और स्कन्द को [illegible] किया। बाद में शिव के अनुरोध पर बाणासुर को प्राणदान दिया और अनिरुद्ध का उद्धार हुआ।

हमारा साहित्य ऐसी लोकरंजक कृष्ण कथाओं से भरा हुआ है। कृष्ण सोलहों कलाओं से पूर्ण अवतार हैं। स्वर्ग और पृथ्वी पर कृष्ण जैसा रंजित चरित्र शायद ही कोई मिले।

इन्ही कृष्ण का इन्ही भगवान् का जन्म दिवस भाद्र कृष्णाष्टमी है। यह जन्माष्टमी है अष्टमियों में सर्वश्रेष्ठ। दक्षिण भारत वाले यह जन्माष्टमी श्रावण कृष्णाष्टमी को मानते हैं।

जन्माष्टमी के दिन माता देवकी के सहित कृष्णपूजन का विधान है। पहले देवकी की पूजा होती है और पश्चात् कृष्ण की। सम्प्रति मन्दिरों और घरों में यह उत्सव राष्ट्रिय स्तर पर मनाया जाता है। उपवास रखा जाता है और अर्धरात्रि काल में पचामृतस्नान और विशिष्ट रूप से सर्वशृंगार सहित षोडशोपचार पूजा होती है। इस अवसर पर रात्रि जागरण और कीर्तन का भी बड़ा महत्व है। दूसरे दिन नवमी को नन्द महोत्सव होता है। इसमें दूध, दही, घी, जल और हरिद्रा तैल आदि से परस्पर सेचन तथा विलेपन (दहिकादो) किया जाता है। श्रीमद्भागवत में इस उत्सव का बड़ा उदात्त वर्णन आया है। उत्सव का अति विशिष्ट रूप श्री नाथद्वारा और ब्रज (मथुरा-वृन्दावन) में आज भी देखा जा सकता है।

जन्माष्टमी के दिन कृष्ण भगवान् का प्रादुर्भाव निराशा में आशा के संचार के लिए होता है। उनके प्राकट्य से भक्तों की आशा फलोन्मुखी होती है। सत्पुरुष प्रसन्न होते हैं। अंधकार को प्रकाश मिलता है और श्रुति भगवती प्रार्थना करती है ''तमसो मा ज्योतिर्गमय''। कृष्ण का यह जन्म दिवस वास्तव में सौन्दर्यमय और आनन्दमय है जब कि साधुओं को त्राण मिलता है, दुष्कर्म का विनाश होता है एवं धर्म की स्थापना होती है।

भाद्र मास की शुक्ला तृतीया को तीज अथवा हरितालिका व्रत रखा जाता है। यह व्रत सधवाओं के लिए बड़ा सौभाग्यवर्द्धक है। इस व्रत की परम्परा अति प्राचीन काल से आ रही है। इस व्रत दिन की प्रतीक्षा और तैयारी महीनों से पहले होती रहती है। इस व्रत के अवसर पर स्त्रियाँ नवीन वस्त्र धारण करती हैं और पुत्रियों तथा बहनों को भी नवीन वस्त्र धारण कराती हैं।।

तीज भगवती पार्वती का व्रत है। इस व्रत के दिन निर्जल व्रत का विधान है। इस व्रत के दिन स्त्रियाँ नहा धोकर स्वच्छता-पवित्रता के साथ शिव और पार्वती की मूर्तियां प्राण प्रतिष्ठित कर व्रत के सुचारुरूपेण पालन करने का संकल्प करती हैं। संकल्प करते समय अपने पाप मोचन तथा अपने सकल परिवार के कल्याण की कामना करती है। सकल्प के अनन्तर गणेश जी का विधिवत् पूजन किया जाता है तथा उसके अनन्तर शिव पार्वती का आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, ताम्बूल, कंचुक, एक और छोटा सा वस्त्र तथा यथाशक्ति आभूषणादि से षोडशोपचार पूजन किया जाता है। पूजन शेष पर पुष्पांजलि चढाई जाती हैं। प्रदक्षिणा होती हैं एवं नमस्कार निवेदित होता है। फिर कथा के बाद बाँस की टोकरी में मिठाई, वस्त्र, सौभाग्य सामग्री तथा दान दक्षिणा रखकर आचार्य अथवा पुरोहित को दे दिया जाता है। व्रत की रात में जागरण का विधान है। इधर रात भी शिव पार्वती की पुराण कथा कीर्तन एवं स्तुति आदि करणीय है। फिर दूसरे दिन सबेरे उठ कर पूजा समाप्ति कर पारण किया जाता हैं।

तीज व्रत की कथा स्वयं शिवजी ने पार्वती के इस अनुरोध पर, कि शिवजी तीज का माहात्म्य बतलायें, कही थी। कथा इस प्रकार है—पार्वती जी ने अनुरोध किया—प्रभु! तीज व्रत का माहात्म्य बतलाइए। शिवजी ने कहा—हिमालय पर्वत में गंगा जी के तट पर एक बार तुमने बड़ी तपस्या की बारह वर्ष तक अर्द्धमुखी (उलटा) टंगकर, धूम्रपान कर, चौबीस वर्ष तक जीर्णपत्र खाकर, माघ मास में जलवास कर, वैशाख में पंचाग्नि तापकर तथा श्रावण में निराहार वर्षा में बाहर खड़ी रहकर तुम सारे कष्ट झेलती रही। तुम्हारे पिता तुम्हारी इस तपस्या को देख घोर चिन्ता में पड़े।

सौभाग्यवश उसी समय देवर्षि नारद पधारे। तुम्हारे पिता ने उनकी आराधना-पूजा के बाद उनसे आने का कष्ट करने का उद्देश्य पूछा। नारद जी बोले—"हिमवान्! मैं विष्णुदूत आपको सन्देश देने आया हूं कि भगवान् आपकी पुत्री से विवाह करना चाहते हैं।" इस पर हिमालय बोले—"देवर्षि! भगवान् विष्णु की कृपा हैं, इसमें मुझे प्रसन्नता है—इससे मैं धन्य होऊंगा। नारद जी वहाँ से विदा ले विष्णु धाम गये और इनसे मिलकर बोले—भगवन्! मैंने हिमवान् की कन्या पार्वती से आपका विवाह निश्चित किया हैं। कृपया यह स्वीकार करें।

देवर्षि नारद के विदा होने के बाद पिता हिमवान् तुम्हारे पास पहुँचे और जो कुछ हुआ था कह सुनाया। पिता की बातें तीर सी लगी और उनके वहाँ से जाने के बाद तुम महाचिन्तित शोचित हो विचार करने लगी। इसी समय तुम्हारी एक सखी ने इस चिन्ता शोक का कारण जानना चाहा। तुमने सारी बातें

बता दी और यह भी बतला दिया कि तुम तो महादेव जी से विवाह करना चाहती हो अतः अब तुम्हारे लिए मृत्यु आलिंगन के सिवा और कोई चारा नहीं है। इस पर उस सखी ने कहा कि इसमें प्राण त्याग की कोई बात नहीं है। चलो मैं तुम्हें ऐसे गहन वन में ले चलती हूँ जहाँ तुम्हारे पिता का पहुँचना सम्भव नहीं है।

फिर क्या था ? तुम ऐसे घोर वन में जा छिपी जहाँ तुम्हारे पिता का पहुँच पाना असम्भव था। तुम्हारे पिता खोज-ढूँढ कर हार थककर विलाप करने लगे। इस पर अन्य पर्वतों ने जब कारण पूछा तो उन्होंने बतलाया कि उनकी कन्या पार्वती को कोई चुरा ले गया।

इधर अपनी सखी के साथ उस गहन सघन वन में नदी के किनारे एक गुफा में प्रवेश कर वहाँ तुम मेरे भजन कीर्तन करती रही। तीज के दिन तुमने शिवलिंग स्थापित कर निराहार व्रत रख, रात्रि जागरण किया। तुम्हारे इस व्रत के प्रभाव से मेरा आसन डोल गया। मैं जल्दी से तुम्हारे पास पहुँचा और प्रसन्न होकर तुमसे वर माँगने को कहा। इस पर तुमने कहा—भगवान् यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे आप अर्धांगिनी रूप में स्वीकार कीजिए। मैंने तथास्तु कहा और मैं कैलास लौट आया।

प्रातःकाल होने पर तुमने पूजा सामग्री नदी में प्रवाहित कर स्नान किया और अपनी सखी के साथ पारण किया। ठीक इसी समय तुम्हारे पिता वहाँ पहुँचे और उन्होंने विलाप करते हुए पूछा—"तुम इस घने वन में किस तरह और क्यों आ गई ?" तुमने उत्तर दिया—"चूँकि आपने विष्णु के साथ मेरे विवाह की बात कही, इसलिए मैं यहाँ भाग आई। अब यदि आप भगवान् शिव से विवाह करने की बात स्वीकारें तो मैं आपके साथ लौट जाऊँगी।" इस पर तुम अपने पिता द्वारा सन्तुष्ट होने पर घर लौट आयी और तुम्हारे पिता ने शुभ अवसर पर तुम्हारा विवाह करा दिया। इतनी कथा कह कर शिवजी बोले—देवि ! जिस व्रत के चलते तुम्हारा यह सौभाग्य हुआ उसकी भी कथा सुन लो। यह व्रत हरतालिका व्रत कहा जाता है, क्योंकि तुमको सखी हरण कर वन में लिवा गई इसलिए हरत आलिका हरतालिका कही जाती है। इस व्रत का विधि पूर्वक पालन करने का क्या महत्त्व और माहात्म्य है यह तुमसे छिपा नहीं है। साथ ही तुम यह भी जान लो कि जो स्त्री तीज का व्रत रखती है वह अचल सौभाग्य प्राप्तकर मोक्ष पद की अधिकारिणी होती है। इस व्रत की मात्र कथा सुनने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है।

■

गणेश चतुर्थी

कोई भी चतुर्थी गणेश की चतुर्थी है। यह उनकी पूजा अर्चना की तिथि है। यों तो कृष्णा चतुर्थी गणेश पूजन के लिए पवित्रतर मानी गई है किन्तु भाद्र शुक्ला चतुर्थी सब चतुर्थियों में श्रेष्ठ समझी जाती है।

हमारा जीवन—कृषि प्रधान देश भारत का कृषि जीवन विघ्नो से परिपूर्ण होता है। गणेश विघ्नो के राजा है। अत. विघ्नों से बचने के लिए कृषि को अनिष्ट से बचाने के लिए विघ्नराज गणेश की सांगोपाग पूजा अत्यन्त आवश्यक है।

इस पावन तिथि को गणेश की—गणेश मूर्ति की पूजा होती है। यह पूजा लड्डू से और दूब से होती है। गणेश मोदक प्रिय है इन्हें लड्डू बड़ा प्रिय है। वे गजानन हैं उन्हें दूब चाहिए ही। गणेश पर चढ़ाया हुआ प्रसाद बांट कर खाने का विधान है।

गणेश पूजा का भारत में बड़ा महत्त्व है। हमारे यहां शायद ही कोई ऐसी पूजा होती है जिसके प्रारम्भ में गणेश पूजा नही होती है। गणेश पूजा से पूजा के शुभारम्भ का कारण स्पष्ट है। किसी भी साफल्य के लिए हमें शक्ति और सुदृढता चाहिए। गणेश-गणपति गणेश-गजानन गणेश इसके प्रतीक है। हम इनकी पूजा कर ज्ञान बल मनोबल की प्राप्ति करते हैं।

गणेश के गजमुख गजानन गणपति होने की कथा बडी मनोहारिणी है। एक बार भगवान् शिव शिकार के लिए वन में गये थे। घर में पार्वती अकेली थी। उन्होने स्नान करना चाहा। उन्होंने घर की सुरक्षा के लिए एक प्रहरी का निर्माण किया उसे उचित आदेश देकर स्नान करने लगी। इस बीच शिव पधार गये। वे घर में प्रवेश करने लगे, प्रहरी ने रोका। शिव ने अपने ही घर में प्रवेश निषेध अपना अपमान समझा और क्रोधाभिभूत हो खड्ग से उसका माथा काट दिया। तब तक पार्वती स्नानागार से निकल आई और शिव पार्वती में झगड़ा होने लगा। अन्त में शिव उसे पुनर्जीवन दान के लिए तैयार हुए। उन्होने अपने आदमी को जल्दी से दौडाया ताकि वह जल्दी-से-जल्दी जिस किसी का मस्तक काट लावे जो प्रहरी के धड़ से जोड़ा जा सके। आज्ञा पाते ही आदमी दौडा और जल्दीबाजी में वह एक हाथी का सिर काट लाया। शिव ने वही सिर धड पर रखा और प्रहरी को नवजीवन दिया तथा अपने गण का उसे प्रधान बना दिया। गणेश तब से गणाधिपति है और शिव पार्वती के साथ हैं।

कहा जाता है कि यह घटना भादो शुक्ला चतुर्थी को हुई थी। इसीलिए इस तिथि को इतना महत्त्व दिया गया है।

गणेश देवता है। उन्होंने समय-समय पर कई रूप धारण किये हैं। एक बार उन्होंने मस्त गज का रूप धारण कर कुमारी वल्ली का विवाह अपने भाई सुब्रमन्य से कराया। एक बार उन्होंने काक का रूप धारण अगस्त्य ऋषि के जल कमंडलु को उँडेल कर पवित्र कावेरी का जन्म दिया। एक दूसरी बार जब इन्हें शरारत सूझी तब एक ऋषि के घर में एक किशोर रूप में प्रवेश किया। हालांकि वे पकड़े गये और जंजीर में जकड़ कर एक प्रस्तर स्तम्भ में बाँध दिये गये। जब लोगों को मालूम हुआ कि वे कौन हैं तब सबने उनकी पूजा मोदक से की। सम्भवतः गणेश तब से मोदकप्रिय मुद मंगल दाता हैं और तभी से उनकी यह लड्डू पूजा होती है।

एक समय की बात है जब गजमुक नामक एक असुर रहता था। उसने बड़ा आतंक फैला रखा था। उससे इन्द्रादि सब देवता घबड़ाते थे। विनायक ने उसका नाश किया और सबका उद्धार किया। देवताओं ने इनकी पूजा की। यह पूजा तब से चली आ रही है।

गणेश का वाहन मूषक है। लोगों का कहना है कि यह कल्पना कृषि का प्रतीक है। मूषक जिस धातु से बना है उसका अर्थ है चोर। मूषक अन्न चुराता है। इसीलिए अन्न की सुरक्षा के लिए गणेश पूजा की आवश्यकता होती है। फिर उनका पेट जो काफी बड़ा है अन्न भांडार माना जाता है उनके कान भी बड़े हैं। सूप माने जाते हैं उनका दाँत जो एक है फाल माना गया है और उनका सूंड अन्न कोष। गणेश के एकदंत, गजदंत किंवा सूर्प कर्ण आदि नाम इन कारणों से है।

कहा जाता है कि एक बार लंकाधिपति राक्षस राजा रावण ने अपनी भीषण तपस्या से शिव को प्रसन्न किया और वरदान पाकर वह शिव को लंका ले चला। शिव का लंका ले जाना देवताओं को पसन्द नहीं था। उन्होंने विनायक को प्रसन्न किया और उन्हीं से इससे बचाने के लिए अनुरोध किया। विनायक ब्राह्मण कुमार के वेश में रावण के रास्ते पर खड़े हो गये। रावण आया और उस कुमार को देखकर वह शिव को उसके पास कुछ देर रखकर लघुशंका करने लगा। रावण की लघुशंका समाप्त नहीं हो रही थी और उस कुमार ने पूर्व-निश्चय के अनुसार शिव को जमीन पर रख दिया। शिव जी वहीं जम गये। जब रावण लौटा तब शिव को उठाकर ले जाने की बात असम्भव थी। उसने ब्राह्मण कुमार को डांटा, फटकारा और पीटा। तब उसने अपना रूप विनायक स्वरूप दिखलाया। रावण ने क्षमा माँगी और उनकी पूजा की। उनके आगे माथा टेका-माथा फोड़ा।

एक बार गणेश नवदम्पती को आशीर्वाद देने काशिराज के भवन में गये। रास्ते में एक कूट नामक राक्षस जो पर्वताकार था, मिला। उसने रास्ता रोक दिया। गणेश ने राजा से कितने ही नारियल मँगवाये और उन्हे चट्टान पर फोड़ना शुरू किया। नारियल की चोट से पर्वत तो टूटा ही वह राक्षस भी भाग गया। गणेश के सामने अब भी नारियल फोडने का यही रहस्य है।

कहा जाता है कि वेद व्यास के महाभारत लिखने वाले गणेश जी ही हैं। यह काम उन्होने एक बार में मेरुपर्वत पर बैठकर किया था ऐसा करने मे एक जगह उनका एक दाँत शैली-निर्माण में काम आया। टूट गया और तब से वे एकदंत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

गणेश के सम्बन्ध में एक और कथा है। रावण की माता शिव-पूजा करती थी। इन्द्र ने उस शिव मूर्ति को चुरा लिया और उसे समुद्र मे फेंक दिया। इधर माता ने खाना-पीना छोड दिया। तब रावण ने प्रतिज्ञा की कि वह कैलाश जाकर वहाँ से आत्मलिंग लाकर देगा। वह कैलाश गया। अपनी उग्र तपस्या से शिव को प्रसन्न कर आत्मलिंग लेकर चला। इस घटना से देवलोक में खलबली मच गई। छुटकारे के लिए गणेश से प्रार्थना की गई। गणेश रास्ते में चरवाहा बनकर खडे हो गये। उससे भेंट होने पर रावण ने चाहा कि लघुशंका से निवृत्त हो। उसने आत्मलिंग को चरवाहे को रखने दिया। चरवाहा (गणेश) तैयार हो गया। इधर रावण ने लौटने मे बड़ी देर कर दी फलतः गणेश ने आत्मलिंग को भूमि पर रख दिया। रावण लौटा उसे उठाने लगा। किन्तु टसमस न हुआ। तब से वह आत्म लिंग वहीं है और इस प्रकार गणेश के काम मे सबको शान्ति और सुख मिला।

एक बार गणेश मूषक पर बैठकर चन्द्रलोक से जा रहे थे। वाहन जरा फिसल गया और गणेश गिर पडे। इस पर चन्द्रमा ने व्यंग्य किया। गणेश को यह अच्छा नही लगा और उसे श्राप दिया कि जो कोई उसे देखेगा वह धोखा देने की झूठी घटना में फँसेगा। इस श्राप का बड़ा प्रभाव पड़ा। बेचारा चन्द्र कमल दल मे जा छिपा। चन्द्र के अभाव से सब लोकों में हाहाकार मच गया। देव, ऋषि और गन्धर्व मिलकर इन्द्र के नायकत्व में ब्रह्मा के पास पहुँचे। उन्होने कहा इस समय गणेश के सिवा और कोई उद्धारक नही हो सकता है। चन्द्रमा ने गणेश की अभ्यर्थना की। उन्हें प्रसन्न किया। उन्होंने चन्द्र को वरदान के सिवाय अष्ट सिद्धि दी। उसकी शापमुक्ति के लिए कई शर्तें बतलाई गईं। तब से द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी के चन्द्र दर्शन में इन शर्तों का पालन होता है।

एक बार दुर्गा देवी ने शिव से एक शिशु की, जिसे वह दूध पिलाकर खेला सके, याचना की। शिव ने हँसकर कहा यह सारी सृष्टि तो तुम्हारे शिशु ही हैं। दुर्गा को यह मान्य न हुआ और उसने कहा नही हो तो उसे कार्तिक लाकर दिया जाय। वे कार्तिक को लाने चले गये। इधर दुर्गा मातृत्व से विह्वल खिलौना मूर्ति बनाकर खेलने लगी। इसी समय विष्णु का वहाँ पदार्पण हुआ उन्होंने दुर्गा की इस मूर्ति में दुर्गा को प्रसन्न करने के लिए प्राण दे दिया। दुर्गा जब उससे खेल रही थी, शिव कार्तिक को लेकर आये। वे दुर्गा की गोद में इस नवीन शिशु को देखकर और सारी बातो को जानकर बड़े प्रसन्न हुए। इस प्रसन्नता में उन्होंने सब देवताओ को निमन्त्रण दिया। उन देवताओ में शनि, जो अपनी शनिदृष्टि के लिए कुख्यात है, भी आया। उसके देखते ही शिशु का मस्तक धड़ से पृथक् हो गया। फिर क्या था चारों ओर हाहाकार मच गया। दुर्गा शोक से मूर्च्छित हो गई। शिव से यह दुःख नही देखा गया और उन्होंने अपने गण को किसी भी सोये हुए का मस्तक काट लाने को कहा। गण को जो सबसे पहले मिला वह था, एक हाथी। गण उसका मस्तक काट कर कैलाश ले आया। शिव ने धड़ से उस मस्तक को जोड़कर उसे प्राणवंत कर दिया। किन्तु दुर्गा को अपने शिशु का यह नया रूप अच्छा नही लगा। फलतः शिव ने रूप की पूर्ति गणेश-गणाधिपति गणपति बनाकर की। उसी समय उन्होंने यह भी घोषित किया कि किसी सकल्प के पहले जो कोई गणेश की आराधना करेगा सफलता लाभ करेगा। इस प्रकार गणेश सिद्धिदाता बनाये गये। सिद्धि दाता गणेश की पूजा सर्वत्र तभी से होती आ रही है।

हमारे देश के कोने-कोने में गणेश पूजा बड़ी प्रतिष्ठा से होती है। इसमें सभी समान भाग लेते हैं। स्त्री-पुरुष-बच्चे, बूढे घरों में, मन्दिरों मे, तरुतले, गिरिगुफा मे गणेश पूजे जाते हैं। ऐसा कोई प्रान्त नही जहाँ गणेश पूजा नही होती है। ऐसी कोई पूजा नही जिसका शुभारम्भ गणेश पूजा से नही होता है। गणेश पूजा का महत्व हमारे ग्रंथों में हमारे साहित्य में हमारी लोक गाथाओं में एक समान वर्णित है। इस चतुर्थी के दिन हम गणेश को—विनायक को-सिद्धि दाता को बारम्बार प्रणाम करते हैं।

■

ऋषि पंचमी

भाद्र मास की शुक्ला पंचमी को ऋषि पंचमी व्रत का विधान है। यह व्रत विशुद्ध रूप से स्त्रियाँ ही करती हैं। हाँ, यदि किसी कारणवश कोई स्त्री व्रत रखने में असमर्थ हो, तो उसके बदले उसका पति कर सकता है। इस व्रत के फलस्वरूप जान-अनजान में किये गये सभी प्रकार के पाप धुल जाते हैं, सभी तरह के पाप कर्मों की शान्ति हो जाती है एवं सम्पूर्ण प्रायश्चित हो जाता है।

ऋषि पञ्चमी के दिन व्रतधारिणी मध्याह्न में स्नान के बाद चिड़चिडी की दातुन १०० बार अथवा ८ बार करती है। फिर मृत्तिकास्नान के बाद पंच गव्य पान किया जाता है। यदि पुरुष व्रतधारी हो तो वह हवनोपरांत पंचगव्य लेता है तत्पश्चात् स्नानोपरांत नित्यकर्म, फिर पूजा स्थल का गोबर से लीपना और कलश स्थापन किया जाता है। पुनः अष्टदल कमल लिखा जाता है एवं अरुन्धती सहित सप्तर्षियों का धूप दीप ताम्बूल सहित षोडशोपचार पूजन का विधान है। पूजनोपरांत ब्राह्मणों को भोजन और दान दिये जाकर ऋषि-अन्न का स्वयं भोजन किया जाता है। रात में जागरण किया जाता है एवं दूसरे दिन प्रातःकाल स्वच्छ शुद्ध पवित्र हो अग्नि स्थापना कर उनसे अपनी तमाम त्रुटियों और भूलों के लिए क्षमा याचना की जाती है।

ऋषि पंचमी सम्बन्धी बहुत सारी कथाओं में पहली कथा इस प्रकार है :— पुराकाल में विदर्भ देश में उतंक नामी प्रकांड तथा सदाचार परायण विद्वान् अपनी अत्यन्त सदाचारिणी तथा गुणवती सुशीला नाम्नी पत्नी के साथ रहते थे। उनकी एक कन्या थी और उनको दो पुत्र थे। वे सब के सब बड़ी शांति, खूब संतोष तथा महती प्रतिष्ठा के साथ जीवनयापन करते थे। कालान्तर में कन्या का विवाह एक सुयोग्य वर के साथ हुआ। दोनों आराम से दिन बिताने लगे। कुछ दिनों बाद संयोगवश एकलौती कन्या का पति रोग ग्रसित हो मृत्यु को प्राप्त हुआ। अपनी पत्नी सुशीला से सलाह विचार कर कन्या को अपने घर ले गये। कन्या बेचारी बड़ी चिंता एवं कष्ट से वैधव्य जीवन बिता रही थी। उसके माता-पिता कन्या के दुख से दुखी रहने लगे। जल्दी ही वे गंगा तट वास करते हुए पुत्री के दुःख दूर करने का उपाय सोचने रहे। इधर कन्या बेचारी अपने माता-पिता की सेवा शुश्रूषा में रत थी और उधर पिता विद्यार्थियों को शिक्षा देने में। इस प्रकार सब के दिन कटने लगे।

एक दिन रात्रि काल माता ने देखा कि उसकी दुखिया कन्या की देह में कीड़े पड़ गये एवं देखते-देखते उसका रूप विद्रूप हो गया। माता ने जब कन्या की यह नूतन व्याधि देखी तो उसने सिर पटक लिया। उसने अत्यन्त दुखी होकर

अपने पति उतंक से इसके कारण और उपाय पूछे। उतक बोले—यह इसके पूर्वजन्म का पाप है। यह पूर्वजन्म में ब्राह्मणी थी। इसने एक बार रजस्वला अवस्था मे अपने बरतनो का स्पर्श किया। इस पाप के कारण इसकी देह में कीड़े पड़ गये। इतना ही नही इसने एक बार अपनी पड़ोसिनों को ऋषि पंचमी का व्रत करते देख उनकी बडी अवहेलना की। देह मे कीड़ों का पडना इन्ही दो कारणो से हुआ। ऋषि पचमी व्रत देखने के पुण्य के फलस्वरूप इसका जन्म ब्राह्मण कुल मे हुआ। नही तो इसके पाप तो ऐसे भयकर है कि इसे चडालिनी होना चाहिए। फिर ऋषि पचमी व्रत के माहात्म्य बताकर बोले :—इस व्रत के प्रभाव से स्त्रियाँ घोर-से-घोर पाप से मुक्त हो जाती है। फिर क्या था, सुशीला ने अपनी कन्या से ऋषि पंचमी व्रत का विधि पूर्वक अनुष्ठान कराया। फलस्वरूप कन्या सब रोग दोषो से विमुक्त हुई और पूर्ववत् निश्चित जीवन बिताने लगी।

ऋषि पंचमी विषयक दूसरी कथा इस प्रकार है—

प्रसेनजित नामक राजर्षि राजा विदर्भ देश में राज्य करता था। उसी राज्य में वेद, वेदांग पारंगत सुमित्र नामक ब्राह्मण था। वह अपनी पत्नी जयश्री सहित कृषि कर्म से अपना निर्वाह करता था। किसी समय ब्राह्मण पत्नी जयश्री रजस्वला अवस्था में गृहकार्य करती रही और अपने पति का भी स्पर्श करती रही। कालान्तर में दोनों के प्राणान्त हुए। दूसरे जन्म में स्त्री कुत्ती बनी और पति बैल। ब्राह्मण के पुत्र का नाम था सुमति। सुमति भी पंडित था तथा शास्त्र में पारगत। उसके माता-पिता कुत्ती और बैल के रूप में सुमति के घर मे रहते थे। एक बार सुमति ने अपने माता-पिता का श्राद्ध किया। उस अवसर पर सुमति की स्त्री ने जो खीर बनाई उसमे अकस्मात् एकसर्प विष उगल गया। कुत्ती ने सांप को ऐसा करते हुए देखा अतः इस भय से कही खीर खाने वाले मर नही जायें इसने खीर को छू दिया। जयश्री ने कुत्ती को ऐसा करने देख जल लकड़ो से मारा और पुनः खीर बनाई। जब सब लोग खीर खा चुके तो जयश्री ने बची खीर तथा जूठन को भी जमीन में गाड दिया। फलस्वरूप कुत्ती भूखी रही। इसी दिन सुमति ने बैल को हल मे उसका मुँह बाँध कर जोता था। फलस्वरूप वह बैल भी भूखा ही रहा। इन दोनों के भूखे रहने के कारण श्राद्ध करने का कोई लाभ उन लोगों को नही हुआ। जब ये दोनों भूखे आपस में मिले तो आपस में अपनी अपनी कथा कहते रहे। सुमति ने उन दोनों की बातें सुनीं। सुमति जो पशु-पक्षियों की भाषा समझता था, यह जानकर कि ये दोनों उसी के माता-पिता हैं दुःखी होकर ऋषि आश्रम में पहुँचा और ऋषियों से इस सम्बन्ध में जानना

चाहा। ऋषियों ने बतलाया कि ये दोनों पूर्व जन्म के पाप भोग रहे हैं। इनका उद्धार तभी होगा जब कि सुमति अपनी पत्नी जया सहित ऋषि पंचमी का व्रत कर उद्यापन करेगा। उस दिन बैल की कमाई की कोई वस्तु खाने के काम में न लायगा तथा उसी दिन कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वसिष्ठ तथा जमदग्नि सप्तर्षि की पूजा अरुन्धती सहित करेगा। कहना नहीं होगा कि सुमति की पत्नी जयश्री ने ऋषि पंचमी का व्रत बड़ी आस्था और विश्वास से किया। फलस्वरूप सुमति के माता-पिता मुक्ति पाने में सफल हुए।

राधाष्टमी

भाद्र मास की शुक्ला अष्टमी तिथि श्रीकृष्णवल्लभा राधा की जन्म तिथि है। सारा वैष्णव समाज इस पवित्र तिथि को व्रत रखता है और राधा जन्मोत्सव मनाता है।

राधाष्टमी के दिन शुद्धता-पवित्रता से शौच-स्नानादि आदि से निवृत्त हो, व्रत संकल्प ले राधा कृष्ण की युगल जोड़ी की भजन कीर्तन के साथ सांगोपांग पूजा कर व चौबीस घंटों के भीतर मात्र एक बार रात में फलाहार किया जाता है। उस दिन सन्ध्या के बाद पुनः भजन-कीर्तन का आयोजन होता है तथा फिर भजन कीर्तन के साथ समाप्ति होती है।

राधाष्टमी सम्बन्धी कथा इस प्रकार है—एक बार भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) ने स्वेच्छया अपने दो रूप दक्षिणांग से श्रीकृष्ण तथा वामांग से श्री राधा प्रकट किये। तदनंतर रासलीला—रासक्रीड़ा के लिए श्रीकृष्ण गोपों तथा श्री राधा ने गोपियों को प्रकट किया। इस प्रसंग में एक बार श्री राधा ने अपनी सखी विरजा से प्रेमोलाप करते हुए श्री कृष्ण को देख लिया। श्री राधा इस व्यवहार से अत्यंत क्रुधित हो श्रीकृष्ण की बड़ी भर्त्सना करने लगी। श्रीकृष्ण तो अंत तक चुप रहे। किन्तु श्रीकृष्ण के बालसखा सुदामा को यह सह्य नहीं हुआ। उन्होंने श्री राधा को प्रत्युत्तर दे ही डाला। इस पर श्री राधा उन पर बेहद अप्रसन्न होकर शाप दे बैठी कि सुदामा का जन्म आसुरी योनि में होगा। इस पर सुदामा ने भी अप्रसन्न होकर श्री राधा को शाप दिया कि श्री राधा धरती पर गोपियों के बीच जन्म लेंगी तथा आजन्म भगवान् कृष्ण की विरह ज्वाला में जलती रहेंगी।

अपने पति उतंक से इसके कारण और उपाय पूछे। उतंक बोले—यह इसका पूर्वजन्म का पाप है। यह पूर्वजन्म में ब्राह्मणी थी। इसने एक बार रजस्वला अवस्था मे अपने बरतनों का स्पर्श किया। इस पाप के कारण इसकी देह में कीड़े पड़ गये। इतना ही नही इसने एक बार अपनी पड़ोसिनों को ऋषि पंचमी का व्रत करते देख उनकी बडी अवहेलना की। देह मे कीड़ों का पड़ना इन्ही दो कारणों से हुआ। ऋषि पंचमी व्रत देखने के पुण्य के फलस्वरूप इसका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ। नही तो इसके पाप तो ऐसे भयंकर हैं कि इसे चंडालिनी होना चाहिए। फिर ऋषि पंचमी व्रत के माहात्म्य बताकर बोले :— इस व्रत के प्रभाव से स्त्रियाँ घोर-से-घोर पाप से मुक्त हो जाती हैं। फिर क्या था, सुशीला ने अपनी कन्या से ऋषि पंचमी व्रत का विधि पूर्वक अनुष्ठान कराया। फलस्वरूप कन्या सब रोग दोषों से विमुक्त हुई और पूर्ववत् निश्चित जीवन बिताने लगी।

ऋषि पंचमी विषयक दूसरी कथा इस प्रकार है—

प्रसेनजित नामक राजर्षि राजा विदर्भ देश में राज्य करता था। उसी राज्य में वेद, वेदांग पारंगत सुमित्र नामक ब्राह्मण था। वह अपनी पत्नी जयश्री सहित कृषि कर्म से अपना निर्वाह करता था। किसी समय ब्राह्मण पत्नी जयश्री रजस्वला अवस्था मे गृहकार्य करती रही और अपने पति का भी स्पर्श करती रही। कालान्तर में दोनों के प्राणान्त हुए। दूसरे जन्म मे स्त्री कुत्ती बनी और पति बैल। ब्राह्मण के पुत्र का नाम था सुमति। सुमति भी पंडित था तथा शास्त्र में पारंगत। उसके माता-पिता कुत्ती और बैल के रूप में सुमति के घर मे रहते थे। एक बार सुमति ने अपने माता-पिता का श्राद्ध किया। उस अवसर पर सुमति की स्त्री ने जो खीर बनाई उसमे अकस्मात् एक सर्प विष उगल गया। कुत्ती ने साँप को ऐसा करते हुए देखा अतः इस भय से कही खीर खाने वाले मर नही जायँ इसने खीर को छू दिया। जयश्री ने कुत्ती को ऐसा करते देख जल लकड़ी से मारा और पुनः खीर बनाई। जब सब लोग खीर खा चुके तो जयश्री ने बची खीर तथा जूठन को भी जमीन में गाड दिया। फलस्वरूप कुत्ती भूखी रही। इसी दिन सुमति ने बैल को हल में उसका मुँह बाँध कर जोता था। फलस्वरूप वह बैल भी भूखा ही रहा। इन दोनो के भूखे रहने के कारण श्राद्ध करने का कोई लाभ उन लोगो को नही हुआ। जब ये दोनों भूखे आपस मे मिले तो आपस में अपनी अपनी कथा कहते रहे। सुमति ने उन दोनो की बातें सुनी। सुमति जो पशु-पक्षियों की भाषा समझता था, यह जानकर कि ये दोनों उसी के माता-पिता हैं दुःखी होकर ऋषि आश्रम में पहुँचा और ऋषियों से इस सम्बन्ध मे जानना

महालक्ष्मी व्रत के दिन पहली रानी के पुत्र ढेर सारी मिट्टी हाथी बनाने के लिए ले जाये। फलतः पहली रानी ने विशाल हाथी बना कर लक्ष्मी पूजा की। किन्तु दूसरी रानी उदास बैठी रही। कारण, उसका एक मात्र पुत्र सयोगवशात् कही बाहर चला गया था और मिट्टी के अभाव में हाथी का बनना सभव नही हो सका। जब उसका पुत्र लौटा तो उसने अपनी उदास बैठी माता से इसका कारण पूछा। माता ने अपनी उदासी के कारण बतलाये। राजकुमार ने कहा—"माँ, तुम पूजा शुरू करो, मैं पूजा के लिए असली हाथी लाता हू।" यह कह कर वह भगवान् इन्द्र के पास पहुँचा और उनकी प्रार्थना-पूजा कर उनका गजराज ऐरावत माँग कर लाया। राजकुमार की माता ने विधि पूर्वक पूजा की। राजकुमार के इस प्रयत्न की चतुर्दिक् प्रशंसा हुई और आगे चलकर वह एक अत्यंत प्रतापी और तेजस्वी राजा बना।

एतद्विषयक दूसरी कथा इस प्रकार है—पुराकाल में मंगल नामक राजा की दो रानियाँ थी। राजा दूसरी रानी को अधिक प्यार करता था। उसके लिए उसने एक वाटिका बनवाई। एक दिन उस हरी-भरी वाटिका में एक सूअर घुस आया और वाटिका को तहस-नहस कर दिया। राजा यह समाचार पाकर सूअर के पीछे दौड़ा और उसने उसकी हत्या कर दी। मृत सूअर पूर्व जन्म में चित्ररथ नामक गंधर्व था जो किसी मुनि के शापवशात् सूअर योनि में जन्मा था। राजा द्वारा सूअर योनि से मुक्ति पाने पर वह राजा पर बड़ा खुश हुआ और उसने शाप-मुक्ति के लिए महालक्ष्मी व्रत का माहात्म्य सुनाया और उसने बतलाया कि यदि वह महालक्ष्मी व्रत करेगा तो एक दिन सार्वभौम सम्राट् बन जायेगा। यह बात सुनकर राजा मन ही मन लक्ष्मी व्रत के संबंध में सोचता हुआ अपने महल की ओर चला। रास्ते में उसने कुछ स्त्रियों को पूजन के बाद कथा सुनते देखा। राजा कथा समाप्ति पर कथावाचक के पास पहुँचे। कथावाचक से लक्ष्मी के अनुष्ठान की विधि जानकर राजा ने वही सविधि अनुष्ठान किया और व्रत समाप्ति पर अपने महल लौट आये। राजमहल पहुँचने पर छोटी रानी राजा की भुजा में डोरा देखकर सशंकित हुई। उसने समझा कि हो न हो राजा किसी अन्य प्रेयसी के पास गया होगा, जिसने मंगल सूत्र के रूप में यह डोरा बाँधा है। फलस्वरूप रानी ने राजा के सो जाने पर उस डोरे को खोलकर बाहर फेंक दिया। बड़ी रानी उस फेंके हुए डोरे को उठा कर देखने लगी। बाद में वह एक विद्वान् ब्राह्मण के पास पहुँची, जिसने उस डोरे का महत्त्व और महालक्ष्मी व्रत का माहात्म्य सुनाया। फिर क्या था, बड़ी रानी ने अत्यंत भक्ति और निष्ठा से महालक्ष्मी व्रत रखा और उसे पूरा किया। जब राजा बड़ी रानी के पास गया और उसने रानी की भुजा में डोरा देखा तो उसे अपने डोरे की याद

सुदामा के उपर्युक्त शाप के फलस्वरूप श्री राधा को धरती पर गोकुल में वृषभानु एवं कलावती की पुत्री के रूप में जन्म लेना पड़ा। जिस समय श्री राधा चौदह वर्ष की थी, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण का गोकुल में ही अवतार हुआ। जिस समय श्रीकृष्ण किशोरावस्था में पदार्पण कर रहे थे, उसी समय उन्हें श्री राधा सहित गोकुल छोड़ कर द्वारिका जाना पड़ा। श्री राधा का श्रीकृष्ण से फिर कभी मिलन न हुआ। दीना-दुखिया श्री राधा शाप के फल-स्वरूप आजन्म वियोगिनी रही और आजन्म वियोग ज्वाला में जल रही है।

महालक्ष्मी व्रत

भाद्र शुक्ला अष्टमी से आरम्भ होकर महालक्ष्मी व्रत आश्विन कृष्णा अष्टमी तक पूरे सोलह दिनों तक अखंड चलता है। इसके अनुष्ठान करने वाले धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों पदार्थों के अधिकारी होते हैं। उनकी सकल कामनायें पूरमपूर पूरी होती हैं।

भाद्र शुक्ला अष्टमी के प्रातःकाल शय्या त्याग के पश्चात् सोलह बार हाथ मुख का प्रक्षालन कर सोलह धागों का एक डोरा लेकर महालक्ष्मी को प्रणाम कर सोलह गाँठें लगाई जाती हैं। पुनः इसे धूप-दीप, पुष्पादि से पूजित कर अपने दाहिने हाथ में धारण किया जाता है। फिर लक्ष्मी की पुण्य कथा सुनी सुनाई जाती है। इस प्रकार से सोलह दिनों लगातार करते हुए आश्विन कृष्ण अष्टमी को स्नानोपरांत महालक्ष्मी की मूर्ति या चित्र की विधिवत् पूजा कर महालक्ष्मी के पास उक्त धागे को उतार कर रखा जाता है। फिर पुण्य कथा सुनकर व्रत समाप्त किया जाता है। फिर बटुक ब्राह्मणों की पूजा की जाती है। फिर आटे के सोलह दीप बनाकर ब्राह्मणो को दक्षिणा सहित दान दिया जाता है। फिर ब्राह्मण भोजन कराया जाता है। फिर अन्तिम दिन रात्रि जागरण होता है। व्रतावधि में एकाहार अथवा फलाहार करने के साथ-साथ सात्विक जीवन बिताने का विधान है। यह व्रत प्रतिवर्ष करते हुए सोलह वर्षों तक किया जाता है। सोलह वर्ष में व्रत का उद्यापन किया जाता है। कुछ स्थानों में महालक्ष्मी के पूजन के साथ उनके वाहन हाथी का भी पूजन होता है।

महालक्ष्मी व्रत सम्बन्धी कथा इस प्रकार है—एक राजा था। उसकी दो रानियाँ थी। पहली रानी के अनेक पुत्र थे। दूसरी रानी को मात्र एक पुत्र।

महालक्ष्मी व्रत के दिन पहली रानी के पुत्र ढेर सारी मिट्टी हाथी बनाने के लिए ले जाये। फलतः पहली रानी ने विशाल हाथी बना कर लक्ष्मी पूजा की। किन्तु दूसरी रानी उदास बैठी रही। कारण, उसका एक मात्र पुत्र सयोगवशात् कही बाहर चला गया था और मिट्टी के अभाव मे हाथी का बनना सभव नही हो सका। जब उसका पुत्र लौटा तो उसने अपनी उदास बैठी माता मे इसका कारण पूछा। माता ने अपनी उदासी के कारण बतलाये। राजकुमार ने कहा—"माँ, तुम पूजा शुरू करो, मैं पूजा के लिए असली हाथी लाता हू।" यह कह कर वह भगवान् इन्द्र के पास पहुँचा और उनकी प्रार्थना-पूजा कर उनका गजराज ऐरावत माँग कर लाया। राजकुमार की माता ने विधि पूर्वक पूजा की। राजकुमार के इस प्रयत्न की चतुर्दिक् प्रशंसा हुई और आगे चलकर वह एक अत्यंत प्रतापी और तेजस्वी राजा बना।

एतद्विषयक दूसरी कथा इस प्रकार है—पुराकाल मे मंगल नामक राजा की दो रानियाँ थी। राजा दूसरी रानी को अधिक प्यार करता था। उसके लिए उसने एक वाटिका बनवाई। एक दिन उस हरी-भरी वाटिका मे एक सूअर घुस आया और वाटिका को तहस-नहस कर दिया। राजा यह समाचार पाकर सूअर के पीछे दौडा और उसने उसकी हत्या कर दी। मृत सूअर पूर्व जन्म में चित्ररथ नामक गंधर्व था जो किसी मुनि के शापवशात् सूअर योनि में जन्मा था। राजा द्वारा सूअर योनि से मुक्ति पाने पर वह राजा पर बड़ा खुश हुआ और उसने शाप-मुक्ति के लिए महालक्ष्मी व्रत का माहात्म्य सुनाया और उसने बतलाया कि यदि वह महालक्ष्मी व्रत करेगा तो एक दिन सार्वभौम सम्राट् बन जायेगा। यह बात सुनकर राजा मन ही मन लक्ष्मी व्रत के संबंध मे सोचता हुआ अपने महल की ओर चला। रास्ते में उसने कुछ स्त्रियों को पूजन के बाद कथा सुनते देखा। राजा कथा समाप्ति पर कथावाचक के पास पहुँचे। कथावाचक से लक्ष्मी के अनुष्ठान की विधि जानकर राजा ने वही सविधि अनुष्ठान किया और व्रत समाप्ति पर अपने महल लौट आये। राजमहल पहुँचने पर छोटी रानी राजा की भुजा में डोरा देखकर सशंकित हुई। उसने समझा कि हो न हो राजा किसी अन्य प्रेयसी के पास गया होगा, जिसने मंगल सूत्र के रूप मे यह डोरा बाँधा है। फलस्वरूप रानी ने राजा के सो जाने पर उस डोरे को खोलकर बाहर फेंक दिया। बडी रानी उस फेंके हुए डोरे को उठा कर देखने लगी। बाद में वह एक विद्वान् ब्राह्मण के पास पहुँची, जिसने उस डोरे का महत्त्व और महालक्ष्मी व्रत का माहात्म्य सुनाया। फिर क्या था, बड़ी रानी ने अत्यंत भक्ति और निष्ठा से महालक्ष्मी व्रत रखा और उसे पूरा किया। जब राजा बडी रानी के पास गया और उसने रानी की भुजा में डोरा देखा तो उसे अपने डोरे की याद

आई। पता लगाने पर पता लगा कि छोटी रानी ने अपनी मूर्खता से डोरे का अपमान किया है। राजा छोटी रानी पर क्रुद्ध हो बड़ी रानी के महल गया और वहाँ उन्होंने विधि पूर्वक महालक्ष्मी व्रत पूरा किया।

इधर महालक्ष्मी एक बुढ़िया के वेश में छोटी रानी के महल पहुँची। छोटी रानी जो पहले से ही राजा के बड़ी रानी के महल जाने के कारण गुस्से में थी, उस बुढ़िया को दुरदुराने लगी। इस पर बुढ़िया ने क्रुद्ध होकर छोटी रानी को शाप दिया—"तुम सुअरनी बन कर वन-वन मारी-मारी फिरोगी।" बाद में वह बुढ़िया महालक्ष्मी बड़ी रानी के पास पहुँची। वहाँ उसका बड़ा आदर सत्कार हुआ। महालक्ष्मी उससे प्रसन्न होकर वही स्थायी रूप से निवास करने लगी।

इधर छोटी रानी सुअरनी बनी वन-वन मारी-मारी फिरने लगी। इस क्रम में वह अंगिरा ऋषि के आश्रम में पहुँची। वहाँ उसने अंगिरा ऋषि के उपदेश से प्रभावित होकर महालक्ष्मी व्रत पूरा किया और फलस्वरूप वह एक अत्यंत सुरसुन्दरी रूपवती रानी बन गई।

कुछ दिनों बाद एक दिन राजा शिकार के सिलसिले में अंगिरा आश्रम पहुँचा। वहाँ उसकी भेंट छोटी रानी से हुई। अंगिरा ऋषि से छोटी रानी के सम्बन्ध में पूरी बात सुनकर-जानकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ। वह छोटी रानी को लेकर बड़ी रानी के पास आया। और वे तीनों बड़े आनन्द से रहने लगे। महालक्ष्मी व्रत के पुण्यप्रताप से राजा की दिनानुदिन उन्नति होती गई और एक दिन वह आया जब कि वह सार्वभौम सम्राट् बन गया। इस प्रकार महालक्ष्मी की कृपा से बहुत दिनों तक सांसारिक सुखों का उपभोग करते हुए उन्होंने अंत में स्वर्गलोक भी प्राप्त किया।

दशावतार

भाद्र शुक्ला दशमी के दिन दशावतार व्रत का विधान है। यह व्रत भगवान् विष्णु के दसों अवतारों के निमित्त सम्पन्न किया जाता है।

दशावतार व्रत का विधान निम्नलिखित है—

भाद्र शुक्ला दशमी को प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो व्रत का संकल्प किया जाता है। घर में किसी साफ-सुथरी जगह पर दसों अवतारों की मूर्तियाँ

मृत्तिका किंवा चन्दन निर्मित की जाती हैं। बाद में विनयपूर्वक इन मूर्तियों का षोडशोपचार पूजन होता है तथा चावल और गेहूं के नाना प्रकार के व्यंजन बनाकर बीस की संख्या में भोग लगाये जाते हैं। दिन-रात फलाहार किया जाता है। रात में दशों अवतारों की कथायें कही सुनी जाती हैं।

दशावतार की संक्षिप्त कथायें निम्न प्रकार हैं—

पहला अवतार: महाप्रलय से पृथ्वी को बचाने के लिए विष्णु भगवान् का मत्स्यावतार हुआ था। सारी पृथ्वी पानी मे विलीन हो जाने पर भगवान् ने पृथ्वी रूपी नौका की रक्षा के लिए मत्स्य का अवतार लिया। इस नौका में सम्पूर्ण मानव जाति की ही नहीं बल्कि पिता मनु की भी रक्षा हुई। बाद में इसी पिता मनु ने सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार किया।

दूसरा अवतार: अमृत प्राप्ति के लिए देव दानवों ने मिल कर समुद्र मंथन प्रारम्भ किया। पर्वत राज मंदर मथानी बने और नागराज वासुकी रज्जु। मंथन शुरू हुआ और ऐसा देखा गया कि पर्वत मंदर सागर जल में धँसता जा रहा है। एतदर्थ नीचे कोई कड़ी वस्तु रखने की आवश्यकता महसूस हुई। समस्या के निराकरण के लिए सभी भगवान् विष्णु के पास पहुँचे और वे कूर्म अवतार धारण कर मंदर को पीठ पर लेकर सागर मे धँस गये। इस प्रकार समुद्र मंथन पूर्ण हो सका।

तीसरा अवतार: हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष युगल असुरों ने धरती और स्वर्ग पर कब्जा करने के लिए उन्हें जीतना शुरू किया। उनके अत्याचार का सामना करने में सभी हिम्मत हार गये। हिरण्यकशिपु धरती अपहृत कर रसातल में चला गया। तब सभी देवता त्राहि-त्राहि कर भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। भगवान् विष्णु ने वाराह अवतार धारण कर हिरण्याक्ष को मार कर धरती का उद्धार किया।

चतुर्थ अवतार: हिरण्याक्ष की हत्या से हिरण्यकशिपु बड़ा क्षुब्ध और क्रोधित हुआ और उसने समस्त भूमण्डल में भगवद्भक्ति की मनाही करा दी और इस आशय की आज्ञा जारी की कि सर्वत्र हिरण्यकशिपु की पूजा की जाय। इसी बीच उस असुरराज का पुत्र प्रह्लाद पैदा हुआ। वह जब बड़ा हुआ तो उसने अपने पिता हिरण्यकशिपु की पूजा करने से साफ इनकार किया। फलस्वरूप उसके पिता हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद की हत्या करने का निश्चय किया। उसने प्रह्लाद को एक खम्भे में बाँध दिया और खड्ग दिखाकर पूछा—"बताओ कहा है भगवान्।" प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"भगवान् को देखने के लिए आँखों की आवश्यकता है।" इस पर पिता ने कहा—"क्या इस खंभे में तुम्हारा

भगवान् है ।" प्रह्लाद ने कहा—"हाँ पिताजी।" इस पर हिरण्यकशिपु ने भारी क्रोध में आकर जोर से खमे में लात मारी। खंभा टूट गया और उसमें से भगवान् विष्णु का नृसिंह अवतार हुआ। उसने हिरण्यकशिपु का पेट फाड़कर हत्या कर उसे यमलोक पठाया। इस प्रकार हिरण्यकशिपु से धरती का उद्धार हुआ।

पाँचवाँ अवतार : असुरराज बलि बड़ा सुयोग्य तथा नीतिपरायण दानी उदार राजा था। उसके प्रताप से सारे देवता आतंकित हो उठे। उसने बहुत सारे देवताओं को बन्दी बना लिया। सब डरे हवास देवता भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान् विष्णु को अपनी व्यथा-कथा कही। भगवान् देवताओं के उद्धार करने को तैयार हुए। किन्तु असुरराज का दमन साधारण नहीं था। क्योंकि उसके पुण्य अपार थे। अतः जब उसका पुण्य शेष हुआ तो भगवान् ने वामन अवतार धारण कर राजा से मात्र तीन डग भूमि माँगी। राजा के तैयार होने पर भगवान् ने भूमि मापना शुरू किया। उन्होंने एक डग में सारी धरती नाप ली, दूसरे में सारा गगन तथा तीसरे में राजा बलि ने अपनी पीठ सामने कर दी। भगवान् ने उसे पाताल पठा दिया। सभी देवता बलि की जय जयकार करने लगे। भगवान् ने बलि को वरदान दिया कि उसके इस महान् दान के लिए इन्द्र का राज्य समाप्त होने पर इन्द्रासन दिया जायेगा।

षष्ठ अवतार : परशुराम महर्षि जमदग्नि तथा देवी रेणुका के पुत्र थे। वे ब्राह्मण होते हुए भी बड़े क्रोधी थे। एक बार उनके पिता ने उनकी माता से बिगड़ कर उनको आदेश दिया कि वे अपनी माता का सिर काट लें। इस पर उन्होंने तुरन्त अपनी माता का सिर काट लिया। उनके पिता ने उन पर बहुत प्रसन्न हो उन्हें वर माँगने को कहा। उन्होंने वर में यही माँगा कि उनकी माता को जीवन दान मिले। उनके पिता ने तथास्तु कहा और फलस्वरूप उनकी माता जी उठीं।

एक बार हैहयनरेश महर्षि जमदग्नि के पास पहुँचा। उसने महर्षि की सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाली कामधेनु की माँग की। महर्षि के तैयार नहीं होने पर उसने न मात्र कामधेनु को ले लिया, प्रत्युत् उसने महर्षि की भी हत्या कर दी। जब परशुराम आश्रम आये तो उन्होंने माता से सारी बातें सुनी। वे अत्यंत क्रोधित हो नरेश की राजधानी पहुँचे। उन्होंने नरेश की सेना सहित हत्या कर दी और प्रतिज्ञा की कि वे तमाम क्षत्रियों का नाश कर देंगे। उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश किया। अंत में अपने पितामह के कहने पर यह काम बन्द किया और आश्रम लौट आये।

सप्तम अवतार : पाप और पाखंड से मुक्ति के लिए भगवान् विष्णु ने राम

अवतार धारण किया। वे दशरथ-कौशल्या के पुत्र-रूप में धराधाम पर उतरे। उन्होंने चौदह वर्षों तक जंगल में अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ वनवास के दुख भोगे। इस बीच रावण द्वारा सीता हरण होने पर उसका सारा परिवार यमलोक गया। सीता का उद्धार हुआ और राम-राज्य की स्थापना हुई।

अष्टम अवतार : कृष्णावतार द्वापर में हुआ था। उन दिनों कंस जरासंध एवं कौरवों के अत्याचार से सर्वत्र त्राहि-त्राहि फैली हुई थी। कृष्ण के जन्म काल से उनके मामा कंस उन्हें मौत के घाट उतारना चाहते थे किन्तु कृष्ण किसी प्रकार सब कष्टों को भोग कर जीवित रह सके। उन्होंने कंस को मारा जरासंध को मरवाया तथा महाभारत के सूत्रधार कौरवों को नेस्तनाबूद किया। इस प्रकार कृष्ण दुनिया की सकल व्याधियों को दूर कर सहज सुगम राज्य बनाने में सफल हुए। कृष्ण सोलह कलाओं में प्रवीण थे। वे रंग भूमि से रण-भूमि तक नटनागर के रूप में जाने गये। ब्रज में बाल लीला से रास लीला तक की। उन्होंने नवीन राज्य द्वारिका में बनाया। उन्होंने अनेकानेक भक्तों का उद्धार किया और गीता में अपनी ही वाणी को सार्थक बनाया।

नवम अवतार : भगवान् बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु में हुआ था। ज्योतिषियों ने उनके विषय में भविष्यवाणी की थी कि या तो महान् संत होंगे अथवा सम्राट, लेकिन हर हालत में उनका वैराग्य लेना अवश्यम्भावी है। उनके पिता ने उन्हें इस भांति रखा कि वे दुनिया के दुःख दर्द से दूर रहें। किन्तु एक दिन के दर्दनाक दृश्य, एक वृद्ध, एक बीमार तथा एक मृत को देखकर वे असमंजस में पड़े। और उन्होंने अपना सारा साहस बटोर कर अपने नये सुखी परिवार को छोड़ कर वैराग्य अपनाया। उन्होंने कठोर तपस्या की और एक दिन जब उन्होंने आत्मज्ञान की खोज में अपने आपको लुटा देने का संकल्प किया तो उन्हें आत्मज्ञान हुआ। उनका नाम बुद्ध हुआ। उन्होंने अपना सारा जीवन समस्त विश्व कल्याण मे लगाया। उन्होंने अपना संदेश (शांति, अहिंसा और प्रेम) सम्पूर्ण मानवता को दी। उनका चलाया 'बौद्ध धर्म' विश्व के महान् धर्मों में स्थान रखता है।

दशम अवतार : अभी कलियुग तृतीय चरण में चल रहा है। तमाम विकासों एवं अभ्युदयों के रहते हुए यह संसार घोर अन्धकार की ओर जा रहा है। कहा जाता है कि अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार और दुराचार के अत्यन्त चरम सीमा पर पहुँचने पर भगवान् का कल्कि अवतार होगा तब कलियुग का सत्यानाश हो जायगा और अन्याय पर न्याय की विजय होगी।

वामन द्वादशी

भाद्र मास की शुक्ला द्वादशी को वामन द्वादशी व्रत रखा जाता है। इस तिथि को भगवान् विष्णु का वामन अवतार हुआ था। इस दिन भगवान् वामन की जयन्ती मनाई जाती है।

भाद्र मास की शुक्ला द्वादशी के प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त हो दिन में फलाहार पर रह कर वामन भगवान् का स्मरण करते हुए व्रत संकल्प किया जाता है। मध्याह्न में भगवान् वामन की सांगोपांग पूजा कर सत्पात्र को मृत्तिका पात्र में दही, चावल, शक्कर तथा जल भरे कलश का दान किया जाता है। रात्रि में भगवान् की ध्यानवन्दना के बाद वामन अवतार की कथा कही सुनी जाती है।

वामनावतार की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :

त्रेता युग की कथा है। दैत्यराज पुरोचन एक प्रतापी राजा था। उसका पुत्र बलि अपने पिता के समान ही प्रतापी गुणवान और युद्ध विद्या निपुण था। देवता उसके नाम ही से कांपने लगते थे। उसने कई देवताओं को सदा के लिए कारागार में बन्द कर रखा था। देवता लोग उससे भयभीत हो भगवान् विष्णु के पास जाकर राजा बलि की अत्याचार कहानी कहने लगे। भगवान् ने कहा 'बलि कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। वह दानी है, तपस्वी है। उसके तप और दान व्यर्थ नहीं जा सकते। फिर भी आप लोगों को राजा से त्राण दिलाने की कोशिश होगी।

कालान्तर में बलि ने एक विशाल यज्ञ प्रारम्भ किया। उसने निश्चय कर लिया था कि यज्ञकाल में जो कोई जो कुछ मांगेगा, दिया जायगा। यज्ञ काल में वामन रूपी भगवान् यज्ञ क्षेत्र में पहुँचे। बलि के गुरु शुक्राचार्य को सन्देह हुआ। उसने बलि को चेतावनी दी कि वह जरा सम्हले। किन्तु बलि जो संकल्प का पक्का था अपनी बात पर दृढ़ रहा। उसने वामन को बुलाकर कुछ मांगने को कहा। वामन ने मात्र तीन डेग जमीन मांगी। बलि दान के लिए तैयार हो गया। अब वामन ने अपना अलौकिक रूप प्रगट किया। उन्होंने एक डेग में धरती तथा दूसरे में गगन नाप लिया। और जब तीसरा डेग उठाया तो बलि स्वयं नीचे आ गया। बलि के इस त्याग और दान से सभी देवता प्रसन्न हो जय-जयकार करने लगे। भगवान् ने बलि को पाताल लोक का राज्य दिया और वचन दिया कि उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होगी। इस प्रकार भगवान् विष्णु ने देवताओं की रक्षा की।

गोत्रिरात्रि

भाद्र शुक्ला त्रयोदशी से आरम्भ होकर भाद्र पूर्णिमा तक गोत्रिरात्रि व्रत का विधान है। यह व्रत गृहस्थों को सुखसम्पदा संतति देने वाला है।

भाद्र शुक्ला त्रयोदशी को नित्यकर्म समाप्त कर स्नान-ध्यान के बाद व्रत संकल्प लिया जाता है। बाद में लक्ष्मी नारायण की मूर्ति बनाकर उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर पंचोपचार से पूजन होता है। पूजनोपरान्त सकुशल व्रत-समाप्ति के लिए प्रार्थना की जाती है। पुनः सवत्सा गाय की पूजा तथा उसकी प्रदक्षिणा की जाती है। पूजा का यह क्रम लगातार तीन दिनों तक चलता है। इन दिनों व्रती को फलाहार पर रहना पड़ता है। पूजा समाप्ति पर भगवान् की प्रार्थना में, भगवद्भक्ति में रत रहने तथा गोसेवा में निरत रहने की मनोकामना की जाती है। इस अवसर पर तीनों दिन व्रत-माहात्म्य के लिये व्रत कथा सुनी जाती है।

उपर्युक्त व्रत कथा का सार इस प्रकार है—सूर्यवंश के राजा दिलीप संतान-हीन थे। उनकी रानी सुदक्षिणा पुत्रहीना होने के कारण बड़ी चिंतित रहती थी। एक दिन राजा रानी ने महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँच कर उनकी बड़ी पूजा अर्चना की। महर्षि ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए बताया कि चूँकि आपने एक बार स्वर्गपुरी से लौटते हुए कामधेनु को प्रणाम नहीं किया था, अतः उसने आपको सन्तानहीन होने का शाप दिया था। अतः आप शाप मुक्ति के लिए गोत्रिरात्रि व्रत करें ताकि आपकी मनोकामना पूरी हो।

राजा ने अपनी पत्नी के साथ व्रत रखा और व्रत समाप्ति पर कामधेनु की पुत्री नन्दिनी को चराने जंगल ले गये। वहाँ जंगल में नन्दिनी चरती हुई एक गुफा में पहुँच गई और शीघ्र ही उन्हें भयंकर सिंह का गर्जन सुनाई पड़ा। राजा ने देखा सिंह ने बेचारी नन्दिनी को दबोच रखा है। राजा ने नन्दिनी की रक्षा के लिए धनुष बाण सम्हाले। किन्तु यह क्या ? उनके हाथ जहाँ के तहाँ रह गये। इस पर सिंह ने कहा—'राजन् मैं कोई साधारण सिंह नहीं हूँ। मैं कुंभोदर हूँ। माँ पार्वती ने मुझे देवदारु वृक्ष की रक्षा के लिए नियुक्त किया है। मैं यहाँ आये जानवरों को खाकर अपना जीवन गुजारता हूँ। अतः आप अपने घर जायें।' सिंह की बोली सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ और वे बोले—'यह गाय गुरु वशिष्ठ को अत्यन्त प्रिय है। इसे छोड़ दो। इसके बदले उनकी अन्य गायें ले लो।' सिंह बोला—'राजन् ! इसी गाय से अपना पेट भरना मेरा धर्म है। मैं किसी भी तरह धर्मच्युत होना नहीं चाहता हूँ। राजा ने कहा—ऐसी अवस्था में तुम मुझे खाकर अपना पेट भरो और गाय को जाने दो। सिंह ने कहा

"राजन् ! एक साधारण गाय के लिए ऐसा क्यों करते-कहते हो।" राजा सिंह की बातों पर कोई ध्यान दिये बिना अपने शरीर के खण्ड-खण्ड कर उसको खिलाने लगे। इस तरह करते हुए कुछ देर में जब वे मरने-मरने को हुए तो आकाश मण्डल में जय-जयकार की ध्वनि गूँजने लगी। सिंह लापता था और नन्दिनी राजा के सामने थी। नन्दिनी बोली—"राजा ! मैं तुम्हारी परीक्षा कर रही थी। तुम्हारा व्रत पूरा हुआ। तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। तुम्हें एक तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा।" राजा नन्दिनी के चरणों पर गिरे और उसे प्रणाम कर आश्रम लौटे। वहाँ उन्होंने सारी कथा गुरु महाराज को बताई और उनका आशीर्वाद ले रानी के साथ राजभवन लौटे आये। कालांतर में राजा को आशीर्वाद स्वरूप पुत्र की प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम पड़ा रघु। रघु के नाम पर वंश चला रघुवंश।

अनंत चतुर्दशी

वर्षा ऋतु का भाद्र मास कष्ट और खतरे का मास माना जाता है। इस मास में जीवन, धर्म, स्वास्थ्य पर छाया आ जाती है। इसीलिए भाद्र प्रारम्भ के पूर्व ही रक्षाबन्धन होता है, बाद में भगवान् कृष्ण का अवतार होता है और अन्त में अनन्त भगवान् की आराधना होती है।

अनन्त भगवान् की आराधना और माता लक्ष्मी की पूजा अनन्त चतुर्दशी को होती है। अनन्त कथा के सिलसिले में लिखा है कि यह पूजा अनन्त की है जो काल रूप भगवान् कृष्ण और काल का नाम है। विष्णु कृष्ण रूप है और शेष नाग काल रूप हैं अतः दोनों की सम्मिलित पूजा होती है। माता लक्ष्मी धन धान्य की देवी हैं। मनुष्य उनसे अच्छी फसल के लिए तथा उसकी रक्षा के लिए याचनार्थी होता है। देवी प्रसन्न होकर तथास्तु कहती हैं।

सर्वजन प्रिय वर्षा ऋतु का यह अन्तिम उत्सव है। कृषि प्रधान भारतवर्ष के लिए अनन्त चतुर्दशीव्रत पूजा बड़े महत्व की है। चतुर्दशी रिक्त तिथियों में अन्तिम है। रिक्त का अर्थ है खाली। खाली होने पर ही भरती के लिए भगवान् की आराधना की जाती है। भगवान् विश्वबन्धु हैं, वे प्रसन्न होकर रिक्त को पूर्ण बनाते हैं।

अनन्त पूजा जलाशयतट पर वृक्ष की छाया में जहाँ पवित्रता की स्वाभाविक भावना क्रीड़ा करती है—सम्पन्न होती है। उस दिन चौदह गांठवाले डोरे के

बांधने का विधान है। कथा में लिखा है कि इस व्रत में चौदह ग्रन्थि देवताओं का पूजन किया जाता है। इनमें आदि में जगत् के पालन कर्ता विष्णु अन्त में सृष्टि पालक धरणी धर अनन्त (शेष) और मध्य में सृष्टिसंचालक बारह देवता होते हैं, ये बारह देवता हैं—सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, सृष्टिसंहारक शिव, सृष्टि निर्वाहक अग्नि, अमृतदायक सोम, प्राण दायकसूर्य, विघ्नविनाशक गणेश, देव सेनापति स्कंद, देवराजा इन्द्र, जीवन के मुख्य साधन जल वायु और अन्न के अधिष्ठाता वरुण, पवन, पृथ्वी तथा सृष्टि के बसाने वाले वसु। ये सभी देवता जीवन-जगत् की सकल आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं।

अनन्त व्रत सब पापों का हरण करने वाला एक अत्यन्त शुभ व्रत है। इससे पुरुष और स्त्री—दोनों को सकल मंगल कामनाएँ पूरित और भरित होती हैं। सभी सब पाप से मुक्त हो परमानन्द पद को प्राप्त करते हैं। इसके सम्बन्ध में स्वयं श्री कृष्ण ने पार्थ से कहा है—हे पार्थ! अनन्त यह मेरा नाम है, इसे तुम मेरा रूप समझो। आदित्यादिक वारों में जो काल सिद्ध है। और यह जो काल मैं तुम्हें बता रहा हूँ वही अनन्त नाम से विख्यात है। वही काल रूप में पृथ्वी का भार उतारने के लिए यहाँ अवतीर्ण हुआ है। दानवों के विनाश के लिए वसुदेव जी के कुल में उत्पन्न मुझको, हे पार्थ अनन्त समझो। मैं ही कृष्ण, विष्णु हरि, शिव, ब्रह्मा, सुरेश और सर्वव्यापी ईश्वर हूँ। मेरा न आदि है, न मध्य है, न अन्त है। मैं तीन गुणों से परे अव्यय पुरुष हूँ। यह विश्व मेरा रूप है। हे पार्थ! मैंने तुम्हारे विश्वास के लिए योगियों के ध्यान करने योग्य सर्वश्रेष्ठ रूप पहले ही दिखाया था। वही विश्व रूप अनन्त है जिसके अन्दर चौदह इन्द्र, आठ वसु, बारह आदित्य, एकादश रुद्र, सप्त ऋषि, समुद्र, पर्वत, नदी, वृक्ष, भास्कर और तुषित नाम के देवताओं के, तेरह विश्वदेवा, नव दिशा, पृथ्वी, पाताल भूर्भुवः आदि लोक के साथ है। हे पार्थ! इसमें सन्देह न करो; वही मैं हूँ।

विधि पूर्वक व्रत कर मनुष्य, धूप, दीप, नैवेद्य और सुन्दर वस्त्र परिधानकर पूजा कर हल्दी के रस से रंगे चौदह गाँठों से युक्त अनन्त के सुन्दर डोरे को पुरुष दाहिने हाथ में और स्त्री बायें हाथ में बांधकर सकल मंगल को प्राप्त होते हैं, पाप मुक्त होते हैं। यह व्रत सकल मनोरथ दाता है।

अनन्त-व्रत-पूजा से अनन्त व्रत कथा का अधिक महत्त्व है। प्रारम्भ में यह कथा श्रीकृष्ण ने पाण्डव को सुनायी थी। श्रीकृष्ण कहते हैं—सत्य युग में वेद-वेदांग का पारगामी सुमन्त नामक विद्वान् था, उसकी पत्नी थी सब लक्षणों से युक्त। उसका नाम था दीना। दीना की कन्या हुई शीला बड़ी ही सुशीला! कुछ दिनों बाद शीला की माता स्वर्ग सिधार गयी। सुमन्त ने दूसरा ब्याह

किया। दूसरी पत्नी का नाम था कर्कशा। कर्कशा यथा नाम तथा गुण। वह बड़ी कर्कशा, अत्यन्त क्रोधिनी, नित्य क्लेश करने वाली, निर्दया, स्नेह-रहिता, कुरूपा और कटुभाषिणी थी। ब्याह योग्य होने पर पिता ने पुत्री शीला का ब्याह महात्मा मुनिराज कौडिन्य से कर दिया। जब शीला पतिगृह चली तब कर्कशा ने भोजन सामग्री की जगह मिट्टी का ढेला बांध दिया। कुछ दूर पर पति पत्नी थक कर सुस्ताने लगे। वहाँ शीला ने देखा स्त्रियाँ अनन्तपूजा कर रही हैं। शीला ने भी बड़ी भक्ति और श्रद्धा से पूजा की, अनन्त बाँधा और कथा सुनी। फिर दोनो गृह की ओर चले। पूजा के फलस्वरूप मिट्टी का ढेला दिव्य वस्तु में परिणत हो गया। उनके घर में लक्ष्मी का वास हो गया। वह अत्यन्त सौभाग्य-शालिनी हो गयी। एक दिन कौडिन्य ने पूछा—बाँह में यह बँधा डोरा कैसा है? शीला ने बताया यह अनन्त है। कौडिन्य ने, जो दुर्बुद्धि और दुर्भाग्य का शिकार हो गया था, डोरे को तोड़ कर फेंक दिया और शीला का अपमान किया। कौडिन्य के इस कुकर्म के फलस्वरूप घर से लक्ष्मी विदा हो गयी। घर में आग लग गयी और उसका सब प्रकार से नाश हो गया। शीला के यह बतलाने पर कि ये सारे दुःख दारिद्र अनन्त के अपमान के कारण हुए हैं। कौडिन्य को विरक्ति हो गयी और वह अनन्त भगवान् की खोज में निकल पड़ा। वह अनेक स्थानो में जाकर और अनेक लोगों से इस संबध में पूछकर तथा अनिश्चित उत्तर पाकर निराश हो गया। जब वह घोर पश्चात्ताप में मृतवत् हो रहा था तब ब्राह्मण वेश में अनन्त भगवान् प्रकट हुए। अब तक कौडिन्य पाप मुक्त और पुण्य को प्राप्त हो चुका था। वह भगवान् के चरणों पर झुका और उसने प्रार्थना की कि मैं पापी हूँ, पापकर्मों को करने वाला हूँ, मेरे मन में भी पाप है और मैं पापों का पैदा करने वाला हूँ। हे कमलनयन! मेरी रक्षा कीजिये और सब पापों के हरण करने वाले होइये। भगवान् ने प्रसन्न होकर उसे तीन वरदान दिये—दारिद्रयनाश, धर्म प्राप्ति और विष्णु लोक पद। कौडिन्य प्रसन्न हो घर आया। उसने चौदह वर्ष तक अनन्त भगवान् का व्रत किया। फलस्वरूप उसकी लक्ष्मी लौट आयी और अपनी पत्नी शीला के साथ स्वर्गोपम संसार सुख भोग कर परम पद को प्राप्त हुआ।

अनन्त का उद्यापन आदि, मध्य या अन्त में कहीं भी किया जा सकता है। उद्यापन के समय अनन्त देव की स्वर्ण प्रतिमा निर्मित होती है। उसको पूर्ण-पात्र में, श्वेत वस्त्र से ढँक कर छत्र और जूते के सहित ब्राह्मण को दान दिया जाता है। इसके सिवा आभरण सज्जित गऊ दक्षिणा में दी जाती है। अन्त में पूजा और दक्षिणा सहित चौदह ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता है।

अनन्त व्रत से अक्षय पद की प्राप्ति होती है। मनुष्य सकल मनोरथ पूर्ण

होते हैं। इससे निर्धन को धन, पुत्रहीन को पुत्र और रोगी को आरोग्य मिलता हैं। यह अनन्त व्रत पाप मुक्त कराता है और परमपद प्राप्त कराता है।

रम्भा चतुर्दशी

भाद्र मास की शुक्ला चतुर्दशी को रंभा या कदली व्रत का विधान है। यह व्रत पतिव्रता, पुत्रवती तथा सौभाग्यशालिनी स्त्रियों के लिए आवश्यक है।

रम्भाव्रत के लिए एक वर्ष पूर्व से तैयारी करनी पड़ती है। व्रतधारिणी अपने हाथों कदली तरु का रोपण करती हैं तथा वर्ष भर उसका लालन पालन करती है और जब उसमें फल लगने को होता हैं तब व्रत का अनुष्ठान किया जाता है। यों तो प्रतिदिन कदली तरु के पास बैठकर फल-फूल तथा धूप दीप से उसका पूजन किया जाता है, परन्तु जब भाद्र पद की शुक्ला चतुर्दशी आती है तब उसके विशेष पूजन का आयोजन किया जाता है। उस दिन उसके पूजन के लिए फल, फूल, धूप, दीप, सप्त धान्य, रक्त चंदन, दही, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र, नैवेद्य, जायफल तथा सुपारी आदि कई वस्तुऐं जमा की जाती हैं और विधिवत् पूजा के बाद भोग लगाया जाकर तरु की प्रदक्षिणा की जाती है। कहा गया है कि रंभाव्रत के फलस्वरूप स्त्रियों के सुख-समृद्धि-सौभाग्य में वृद्धि होती है, घर धनधान्य तथा पुत्र-पौत्र से परिपूर्ण होता है एवं कुल परिवार के यश गौरव फैलते है।

रम्भाव्रत संबंधी कथा इस प्रकार है—

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण से अपनी परिणीता देवी रुक्मिणी ने पूछा—महाभागे! "अक्षय सौभाग्य एव शाश्वत समृद्धि की आकाक्षा रखने वाली स्त्रियों को कौन-सा व्रत करणीय है?" भगवान् बोले—"रंभाव्रत।" और फिर उन्होंने कृपा पूर्वक इसकी विधि भी बतलायी। बाद में रुक्मिणी ने रंभाव्रत विधि पूर्वक रखा और उन्हें फलस्वरूप वांछित फल की भी प्राप्ति हुई।

कुछ दिनों बाद जब कौरव सभा में दुःशासन द्वारा अपमानित होकर देवी द्रौपदी ने भगवान् को पुकारा तब भगवान् ने स्वयं उपस्थित होकर रुक्मिणी के रंभाव्रत के फल का कुछ अंश द्रौपदी को दिया। फलस्वरूप द्रौपदी की चीर बढ़ती ही गई और सहस्र हाथियों का बल रखने वाला दुःशासन हारा और लज्जित होकर भागा। और इस प्रकार रंभाव्रत के पुण्य प्रताप से द्रौपदी की लाज बची।

जितिया

आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को जीवित्पुत्रिका या जिउतिया या जितिया व्रत का विधान है। यह व्रत उस सौभाग्यवती नारी के लिए है, जो पुत्रवती है। मातायें यह व्रत अपने पुत्र की दीर्घायु एवं स्वस्थता के लिए करती है। जीवित्पुत्रिका का व्रत रखने वाली माता को आजन्म पुत्र शोक नही होता है और कोई भी अपनी माता के इस व्रत के पुण्य फल से आजीवन न तो वह किसी कष्ट मे पड़ता और न कभी रोगाक्रांत होता है।

पुराकाल मे एक राजा था—नाम था जीमूतवाहन। वह बड़ा धर्मात्मा, बड़ा दयालु, बड़ा न्यायी था। एक बार राजा जीमूतवाहन मृगया प्रसंग में पर्वत-विहार के लिए गया। सयोगवशात् उसी दिन उसी पर्वत पर मलयवती-नाम्नी राजकन्या देव पूजा के लिए आई। राजा और राजकन्या ने एक दूसरे को प्रेम भरी आंखो से देखा और दोनो के दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गये। मलयवती के पिता तथा भाई राजा जीमूतवाहन से कन्या का विवाह रचना चाहते थे। संयोग से मलयवती का भाई उसी समय उसी पर्वत पर था। जब इन दोनो प्रेमियो की बात उसे ज्ञात हुई तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। इधर हर्ष शोक मिश्रिता राजकन्या अपने महल गई और उधर राजा जीमूतवाहन एक नारी का हृदय द्रावक रुदनक्रंदन सुनकर उसके पास पहुँचा। वहाँ मालूम हुआ कि रोदिता क्रंदिता नारी शंखचूड सर्प की माता है। उसके रुदन-क्रंदन का कारण था उसका एकलौता पुत्र पूर्व निश्चय के अनुसार गरुड़ का आहार बनने वाला था।

दया-द्रवित राजा ने शंखचूड़ के स्थान पर अपने को गरुड़ का आहार बनाकर उसकी प्राण रक्षा कर उसकी माता को पुत्रवती बनाये रखने का संकल्प लिया। सबके मना करने पर भी राजा लालवसन ओढ कर नियत स्थान पर सर्प की भांति लेट गया। ठीक समय पर गरुड़ आया और उसने चोंच मारी। किंतु आश्चर्य ! गरुड की चोंच और राजा के शरीर के संघर्ष के कारण सारा पर्वत गूंज उठा। गरुड ने अपनी चोंच में भीषण कष्ट का अनुभव किया। वह चकित हो रुक गया। किंतु राजा ने लेटे-लेटे परन्तु निर्भय होकर कहा—"आप रुके क्यों ? खुशी-खुशी भोजन कीजिए।" गरुड़ यह जानकर कि यह तथाकथित सर्प कोई अन्य नही प्रत्युत् परम प्रतापी दीनदु खकातर परोपकारव्रती साक्षात् राजा जीमूतवाहन हैं तो लज्जित हुआ और घोर पश्चात्ताप में डूब गया। वह सोचने लगा—"एक है यह राजा जो दूसरे के लिये अपने प्राण तक दे रहा है और एक हूँ मैं जो अपने पेट के लिए दूसरे के प्राण ले रहा हूँ।" गरुड़ बोला—

"महाराज मुझे प्रसन्नता है कि मैं आपके इस त्याग से अपने निन्दनीय कार्य से अलग होता हूँ। आप जो चाहें वर मांगे।" राजा ने कहा—भगवन्! आपने अब तक जितने सर्पो को मारा है उन्हें अपने अमृत से पुनर्जीवित कर दें ताकि सभी मातायें शंखचूड की माता की तरह सुखी रहें।" गरुड ने एवमस्तु कहा और वह चला गया। इस बीच राजकन्या मलयवती के पिता तथा भाई राजा को खोजते उसी स्थान पर पहुँचे। उस दिन आश्विन कृष्ण अष्टमी थी इसी शुभवेला में दोनों का मंगल विवाह बड़ी महिमा-गरिमा के साथ करा दिया गया। तब से इस पुण्य पावन तिथि को स्त्री जाति मे यह व्रत पुत्रदीर्घायुष्य के लिए बडी निष्ठा और शुद्धता से किया जाता रहा है।

जितिया विषयक एक अन्य लोक कथा यों है—एक जंगल में एक सेमर तरु डाली पर एक चील रहती थी तथा उसी के पास एक झाडी में एक सियारिन का वास था। दोनों में बड़ी यारी थी। खान-पान रहन-सहन सब में दोनों साथ रह कर आनन्दमयी प्रसन्नता से अपने जीवन बिताती थीं।

एक बार चील ने देखा—उसके पास-पडोस की स्त्रियां जितिया व्रत रख रही हैं। चील ने भी व्रत रहने का निश्चय किया। चील की देखा देखी उसकी यारिन सियारिन ने भी व्रत रखने की इच्छा जाहिर की। दोनों यारिनें बडी निष्ठा और श्रद्धा से निर्जला और निराहार रहती हुई सर्वकल्याण कामना करती रही। किंतु जब रात आई तो सियारिन को लगी भूख और वह प्यास से तड़पने लगी। उसके लिए भूख प्यास के मारे एक क्षण भी जीना दूभर हो गया। वह चुपचाप बाहर निकल गई। कहीं से किसी शिकारी जानवर की बची मांस-हड्डी खाने लगी। हड्डी कड़कड़ाने की आवाज सुनकर बगल में जागती चील ने पूछा—"बहन! क्या तुमने व्रत भंग किया—हड्डी चबा रही हो?" सियारिन ने कहा—"नही यार, भूख-प्यास से मेरी देह की हड्डी कडमड़ा रही है।" किंतु चील सब बात समझ रही थी। उसने कहा—"झूठ मत बोलो—सब बातें समझ मे आ रही हैं। तुम्हें तो पहले ही सोच लेना चाहिए था कि व्रत निभेगा या नही।" बेचारी सियारिन लजाकर दूर चली गई। उसने भूख प्यास से थक कर विह्वल होकर भर पेट भोजन किया। इधर चील रात भर कष्ट से मर-मर कर भी व्रती बनी रही। व्रत का परिणाम तदनुकूल हुआ। चील के सभी बच्चे स्वस्थ सुन्दर सुलभ सदाचारी हुए और सियारिन के बच्चे विकलांग बीमार और अल्पायु।

जीवित्पुत्रिका (जितिया) व्रत सौभाग्यवती पुत्रवती स्त्रियां बड़ी-बड़ी नेम निष्ठा श्रद्धा भक्ति से निर्जला निराहारा पुत्रायुष्य कामिनी रह कर रखती हैं। आश्विन कृष्ण अष्टमी को प्रसन्नचित्ता आनंदवदना मातायें सर-सागर-सरिता

कूप-स्नान कर व्रत संकल्प करती हैं। दिन ढलने के बाद, सांध्य बेला में सूत निर्मित गंडा (जितिया) पहनकर कथा सुनती हैं। कोई-कोई स्त्री सोने चाँदी की जितिया पहनती हैं। कथा-श्रवण रात्रि बेला में भी होता है। दूसरे दिन प्रातः काल स्नान पूजा दान दक्षिणा भोजन से निवृत्त पुत्र की कल्याण कामना करती हुई व्रत पूर्ण करती हैं। युग-युग से आता हुआ यह व्रत आज भी अपनी महिमा के साथ सर्वकल्याणमय है।

महालय

आश्विन मास की अमावास्या महालय कहलाती है। यह परम पुनीत दिन अपने पितरों को तिलांजलि के साथ श्रद्धांजलि अर्पित करने का अवसर प्रदान करता है। इस दिन की तिलांजलि और पिंडदान से पितरों को महती शांति का अनुभव होता है। आश्विन मास के प्रारम्भ से ही पितर पिंडदान और जल के लिए आशा लगाये बैठे रहते हैं और महालय के दिन तक नहीं मिलने पर उन्हें न केवल निराशा होती है प्रत्युत् वे निराशा में अपनी संतानों को शाप भी देते हैं। महालय के दिन मातृ-पितृ विहीन संतान को प्रातःकाल ही सर-सरिता-कूप-समुद्र में जाकर स्नान कर अक्षत एवं कुश लेकर विधिवत् पूर्वाभिमुख हो पितरों को तिलांजलि देना चाहिए। बाद में ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए और दान देना चाहिए। कहा जाता है कि आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में यम महालय के द्वार मुक्त कर देते हैं कि ताकि सभी पितर भूलोक में उतरकर अपनी संतान से पिंडदान तिलांजलि और जलांजलि ले सकें।

मानव मात्र पर देव ऋण, ऋषिऋण तथा पितृऋण तीन ऋण हैं, जिन्हें चुकाना आवश्यक है। इनमें पितृ ऋण तो ऐसा है जिसके बिना चुकाये सारा जीवन ही बेकार चला जाता है। इसी ऋण को चुकाने का अवसर पितृपक्ष में लागकर महालय के दिन आता है। इस पक्ष और इस दिन का श्राद्ध तिलांजलि, जलांजलि और श्रद्धांजलि अति-अति-अति आवश्यक है। महालय की शाम में दिया जलाने के बाद घर के बाहर पकवान रख दिये जाते हैं, ताकि पितर भोजन कर प्रकाश में प्रसन्नता पूर्वक अपनी संतान को आशीर्वाद देते हुए अपनी यात्रा समाप्त करें।

पितृ श्राद्ध के लिए गया तथा मातृ श्राद्ध के लिए सिद्धपुर (काठियावाड़) में बड़ा महत्त्व है।

दुर्गा-पूजा

शरत्काल की वार्षिक महापूजा शारदीया महापूजा कहलाती है। इस महा-पूजा के चार प्रधान कर्म हैं : स्वप्न, पूजन, होम और बलि। इस पूजा का तीन तिथि तक करने का विधान है।

यह पूजा प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। मोह, आलस्य, दंभ किंवा द्वेष पूर्वक जो इस पूजा से विरत या विमुख होते हैं, उन पर देवी भगवती क्रुद्धा होती हैं एवं उनके सकल मनोरथ विनष्ट हो जाते हैं। इस पूजा के महत्व के सम्बन्ध में सबका एक मत है। इस पूजा को नित्यता युगांतर और कल्पान्तर से आ रही है।

दुर्गा पूजा करने वाले पर सर्व देवता प्रसन्न होते हैं और उनके वर-आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। विधिवत् की गयी पूजा अतुल विभूति और चतुर्फलदात्री है। पूजा करने वाला जैसा फल चाहता वैसा ही उसे प्राप्त होता है। देवी की पूजा से किसी भी प्रकार की कामना अभिलाषा की पूर्ति होती है। रोगी रोग मुक्त होता है और मुमुक्षु मुक्ति लाभ करता है।

इस पूजा के सात कल्प हैं :—नवम्यादि कल्प—भाद्रमास की कृष्णानवमी से आश्विन मास की महानवमी तक. प्रतिपदादि कल्प—आश्विन मास की शुक्ला प्रतिपदा से महानवमी तक, षष्ठादि कल्प—आश्विन शुक्लाष्टमी से महानवमी तक, सप्तम्यादिकल्प शुक्ला सप्तमी से महानवमी तक, अष्टम्यादि कल्प—महाष्टमी से महानवमी तक, अष्टमी कल्प—केवल महाष्टमी के दिन, महानवमी कल्प—केवल महानवमी के दिन। इन सात कल्पों द्वारा ही पूजा का नित्यत्व प्रतिपादित हुआ है। जो जिस अवस्था के हों वे इन सात कल्पों में से किसी एक कल्प में पूजा करें।

दुर्गा-पूजा व्रत है। यह पूजा तीन प्रकार की होती है :—सात्विकी, राजसी और तामसी। निरामिष नैवेद्य, जप-यज्ञ, पुराणादि वर्णित भगवती माहात्म-पाठ और देवीसूक्त जप से सात्विकी, बलिदान और सामिष नैवेद्यादि से राजसी और जप-यज्ञ विहीन सुरा मांसादि से तामसी पूजा होती है। जहाँ पूजा होती है वहाँ सब देवता उपस्थित हो जाते हैं।

कल्प में एक बार देवी महात्म का पाठ आवश्यक है। पूजा पंचगव्य, गायत्री, कषाय, गंधादि, तीर्थ जल, औषधि, शृंगार, पुष्प, रत्न, गीत, वाद्य और नाट्य द्वारा होती है। नैवेद्य, तिल और विल्वपत्र द्वारा होम किया जाता है। इस होम से सब सुख की प्राप्ति होती है। पूजा करने वाला दीर्घायु पुत्र और धनधान्यादि प्राप्त करता है। देवी के पूजोपचार के विषय में जिसकी जैसी

के बाद घर आकर माता, पिता और गुरु को प्रणाम तथा आत्मीय स्वजन तथा बन्धु बांधवों के साथ प्रेमालिंगन करना चाहिए।

दुर्गोत्सव सम्पूर्ण भारत का प्रधान उत्सव है। यह उत्सव बंगाल में विशेष समारोह के साथ सम्पादित होता है। सभी आदमी अपने सारे कार्य छोड कर इस उत्सव में लग जाते हैं। ऐसा दिन वर्ष में केवल एक ही बार आता है। दूर-दूर रहने वाले सबके सब घर आने में नही चूकते हैं। व्यय की कोई चिन्ता नहीं करते। उत्सव में योगदान से अपने जीवन धन्य और सार्थक समझते हैं। देवी विसर्जनोपरान्त सबके सब आनन्द सागर में डूबते उतरते हैं और गले-गले मिल कर अपना जीवन सफल समझते हैं। इस अवसर पर शत्रु मित्र सब भाई-भाई हो जाते हैं।

बंगाल के दशभुजा दुर्गा की मृण्मयी प्रतिमा की पूजा सारे देश मे प्रसिद्ध है। देश के अधिक स्थानों मे शक्ति मूर्ति की स्थापना होती है और पूजनोत्सव होता है। कही-कही पट स्थापन करके देवी की पूजा सम्पन्न की जाती है। कही चण्डी पाठ होता है तो कही वेद पाठ और कही रामायण पाठ। वह देवी जो सबकी नाश करने के कारण दुर्गा है, भक्तों को शोभन और श्रेष्ठ काम देने के कारण मंगला है, योगियों को शिवफल देने के कारण शिवा है, मुनियों की अम्बिका है, योगानल में जल कर सुपेन्द्र सदृश रूप धारण करने के कारण गौरी है—हमारा कल्याण करें। हम इसीलिए उनकी भक्ति पूजा करते हैं।

विजयादशमी

आश्विन शुक्ला दशमी को विजयादशमी का, जिसे दशहरा और अपराजिता दशमी भी कहते है, महोत्सव-महापर्व मनाया जाता है। विजयादशमी भारत में एक राष्ट्रीय त्योहार के रूप में सम्पादित होती है। इस तिथि विजयादशमी का महत्त्व इसी से समझा जाना चाहिए कि इसी दिन भगवान् राम ने लंका पर चढाई की थी और विजय पाई थी तथा विजयी भगवान् राम ने भगवान् शिव की मूर्ति स्थापना की थी। एक प्राचीन ग्रन्थ के अनुसार इस दशमी के दिन तारोदय के समय विजय काल रहता है, इसलिए यह विजयादशमी कहलाती है।

विजयादशमी दुर्गा पूजा का अन्तिम दिन है। उस दिन देवी रूपा दुर्गा असुरों का नाश कर विजय यात्रा पर जाती हैं। उस दिन पत्नीरूपा दुर्गा अपने

पति भगवान् शिव के पास प्रस्थान करती हैं—उस दिन कन्या रूपा दुर्गा अपनी मायका से विदा लेती हैं। इस तिथि पर शमी वृक्ष की विधिवत् पूजा की जाती है। इस अवसर पर परिवार के सभी सदस्यों को नवीन वस्त्र और बच्चों को नवीन वस्त्र के साथ खिलौने खासकर शस्त्रास्त्र जैसे खिलौने दिये जाते हैं। इस अवसर पर बहनें अपने भाइयों को टीका काढ़ती हैं। इस शुभ दिवस पर युद्ध सम्बन्धी हथियारों, वाहनों और स्वर्ण की पूजा प्रदर्शन सहित बड़े पैमाने में की जाती है। विजयादशमी के दिन नीलकंठ (पक्षी) के दर्शन बड़े शुभ और बड़े पुण्य के माने जाते हैं। यह दिन यात्रा के लिए बड़ा मंगल और कल्याण दायक होता है। इस दिन नये काम का शुभारम्भ सदा सर्वदा फलदायक, मंगल दायक और कल्याण दायक होता है।

विजयादशमी का पर्व खूब धूमधाम से दस दिनों तक मनाया जाता है। आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को कलश स्थापन के साथ पूजा शुरू होती है। चंडी पाठ होता है और संयम-नियम से देवी आराधना होती है। अष्टमी की रात महान् रात्रि मानी जाती है। नवमी को बलि दी जाती है और दशमी को प्रतिमा विसर्जन। इस अवसर पर बनाई जानेवाली मूर्ति बड़ी भव्य होती है। सिंहवाहिनी महिषासुर मर्दिनी देवी मध्य में विराजती है और अगल-बगल में लक्ष्मी और सरस्वती रहती हैं। गणेश और कार्तिक ये क्रमशः लक्ष्मी और सरस्वती के पास अपने वाहन चूहे और मोर पर स्थापित रहते हैं। ऊपर शिव का स्वरूप विद्यमान रहता है। मंडप में इन प्राणप्रतिष्ठा प्राप्त प्रतिमाओं के सम्मुख हर कोई श्रद्धा और भक्ति से नत हो जाता है।

विजयादशमी की माहात्म्य-कथा जो भगवती पार्वती के पूछने पर भगवान् शिव ने बताई-सुनाई थी वह संक्षेप में यों है—"भगवान् शिव ने कहा—ठीक विजयादशमी के दिन विजय नामक मुहूर्त आता है जो मानव मात्र के लोक परलोक, कल्याण और मंगल के लिए है। इस मुहूर्त पर की जाने वाली यात्रा सदैव विजयिनी होती है। भगवान् राम ने इस शुभ मुहूर्त पर युद्ध-यात्रा—लंका-विजय-यात्रा की थी, जिसके फलस्वरूप उन्होंने भारी विजय पाई थी। लंका विजय-यात्रा से लौट कर उन्होंने शिव और शक्ति की स्थापना कर उनकी पूजा अर्चना करने के बाद ही वे मर्यादा पुरुषोत्तम बने थे।"

भगवान् शिव की उपयुक्त बातें ज्यों ही समाप्त हुईं भगवती पार्वती ने शमी (वृक्ष) पूजन का माहात्म्य पूछ दिया। इस पर भगवान् शिव बोले—देवि ! जब भगवान् राम ने रावण पर अभियान किया था, तो शमी ने उन्हें शुभ आशीष दिया था कि आपकी विजय अवश्य होगी और यही हुआ भी। भगवान् शिव ने इस शमी पूजन के सिलसिले में महाभारत की वह कथा भी सुनाई जब कि

पांडवों के वनवास काल में अर्जुन के तमाम आयुध वनवास काल के अन्त तक शमी ने अपने क्रोड़ में छिपा रखे थे। ये वे ही आयुध थे जिनके बल पर अर्जुन वीर श्रेष्ठ बने थे और उन्होंने महाभारत युद्ध मे अभूतपूर्व विजय पाई थी।

विजयादशमी का महापर्व विविध प्रकार से सम्पूर्ण देश में और देश के बाहर मनाया जाता है। जो भी विजयादशमी महोत्सव में जो कुछ भी थोड़ा बहुत भाग लेता है, उसे कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य होता है। इस अवसर पर दूर-दूर रहने वाले अपने घर लौटते हैं एवं समस्त परिवार के लोग एक दूसरे से मिलकर अपना जीवन सार्थक समझते हैं। इस तिथि पर राम कथा; रामलीला, अर्जुन-कथा, नृत्य, संगीत, नाटक, गोष्ठी, सभा, जुलूस, कीर्तन, भजन, मिलन, सम्मिलन, सम्मेलन, भोज, दान और पुण्य का आयोजन होता है। इन दिनों लोगों में एक अपूर्व उत्साह लक्षित होता है। बच्चे, बूढ़े, किशोर, वयस्क सब के सब नर-नारी अपने में नवजीवन, नवीन श्रद्धा तथा नवल भक्ति का समावेश पाते हैं। सच तो यह है कि विजयादशमी प्रतिवर्ष वह प्रेरणा लेकर आती है, जिससे वर्ष भर राष्ट्रीयता, संस्कृति और सभ्यता के लोकोत्तर भाव वर्द्धमान होते रहते हैं।

कोजागर

आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को कोजागर व्रत रखा जाता है। इस व्रत का उद्देश्य धन सम्पत्ति की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी के देवराज इन्द्र की पूजा-पूजन से प्रसन्न कर अभीष्ट सिद्धि है।

कोजागर व्रत के दिन शुचितापूर्वक स्नानादि से निवृत्त हो व्रत रखने का संकल्प लिया जाता है। संध्या काल पुनः स्नान कर महालक्ष्मी तथा इन्द्रदेव की पूजा का संकल्प ले तैयारी की जाती है। रात्रिकाल में दोनों की विधिवत् षोड़शोपचार पूजाकर रात्रि जागरण किया जाता है। जागरण के समय भजनपाठ और कीर्त्तन का विधान है। सबके अन्त में नारियल का जल अथवा फल ग्रहण किया जाता है। फिर दूसरे दिन शौच स्नानादि से निवृत्त हो सत्पात्रों को खीर का भोजन कराया जाता है, उन्हे वस्त्रादि दान-दक्षिणा दी जाती है और फिर अन्त में स्वयं भोजन किया जाता है।

कहा जाता है कि व्रत की रात्रि में दीपावलि मनाई जाती है। कारण उस रात में महालक्ष्मी सर्वत्र घूमती चलती हैं और वे जिस पर प्रसन्न होती हैं उनके घर वर्ष भर निवास कर उसे भाग्यवान बनाती हैं।

कोजागर व्रत विषयक कथा इस प्रकार है—पुरा काल में मगध देश में एक विद्वान् था। उसका नाम बलित था। वह बड़ा निर्धन था, किन्तु बड़ा आत्म-सन्तोषी, किसी के सामने किसी भी अवस्था में हाथ नहीं पसारने वाला। लेकिन उसकी पत्नी कर्कशा थी। वह सदा ही अपनी पड़ोसी बहिनों को देख जलती थी और अपने पति को कोसती थी। वह बराबर अपने पति से कहती कि तुम राजा के पास जाओ। वहाँ से माँग कर या चुरा कर धन लाओ अन्यथा यहाँ से निकल जाओ। बेचारा पति सब बातें बर्दाश्त करता रहा। पत्नी का अत्याचार बढ़ता गया और एक दिन ऐसा आया कि पति पत्नी के पितृ-पक्ष के अवसर पर किये गए दुर्व्यवहार से ऊब कर लक्ष्मी की खोज में घर-द्वार छोड़ बाहर चला गया।

भूखा-प्यासा-त्रासित-ताड़ित-व्यथित शोकित बलित जंगल पहुँचा। वह वहाँ कन्दमूल खाकर रहने लगा। वहाँ रहते हुए आश्विन की पूर्णिमा आई। पूर्णिमा की रात में जंगल की नाग-कन्या ने व्रत का अनुष्ठान किया। रात्रि जागरण के लिए द्यूतक्रीड़ा में जब उसे एक साथी की आवश्यकता पड़ी तो उसने बलित से अनुरोध किया। बलित द्यूतक्रीडा को धर्मानुकूल नहीं समझता था, अतः उसने इनकार किया। इस पर नाग-कन्या ने इसके सम्बन्ध में जो तर्क दिये, उससे आश्वस्त होकर उसने अपनी सहमति दी। क्रीड़ा शुरू हुई, बलित क्रीड़ा कला से अनभ्यस्त बाजी पर बाजी हारता गया। ठीक इसी समय लक्ष्मी और नारायण का आगमन हुआ। नारायण ने बलित की दुर्दशा देख लक्ष्मी से कहा—"देवि! बलित की यह दुर्दशा तुम्हारी पूजा के कारण हुई है। इस पर तुम्हारी कृपा होनी चाहिए। लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर बलित को कामदेव जैसा रूप यौवन दिया। फलतः नागकन्या ने उस पर मोहित हो कहा—"तुम एक बार फिर बाजी लगाओ और अगर इसमें तुम्हारी जीत हुई तो मैं तुम्हारी पत्नी हो जाऊँगी?" भगवान की कृपा से बाजी में नाग कन्या हारी। उसे बलित के साथ गंधर्व विवाह करना पड़ा। विवाहोपरान्त पति-पत्नी लक्ष्मी की कृपा से अपार धन सम्पदा के साथ बलित के घर आये। बलित की पूर्व पत्नी ने वैभवशाली पति का स्वागत किया और तीनों मिलजुल कर सानन्द जीवन बिताने लगे।

करवा चौथ

कार्तिक मास की कृष्णा चतुर्थी को करवा चौथ व्रत सम्पादित होता है। यह व्रत प्रायः सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए ही है। इसमें शिव पार्वती, कार्तिकेय और चन्द्रमा की पूजा होती है।

इस व्रत में विधान है कि व्रती प्रातःकाल शौच स्नान आदि से निवृत्त हो व्रत का संकल्प ले एवं दिन भर का उपवास करे। संध्या समय बालू या मिट्टी की वेदी बनाकर उस पर चन्द्रमा की मूर्ति बनाकर उसके नीचे शिव परिवार के सदस्यों की मूर्ति बनाये एवं उन सबकी सांगोपांग पूजा करे—प्रार्थना करे। फिर नैवेद्य, मिष्ठान्न, दक्षिणा के साथ समुचित पात्रों को निवेदित करे तथा चन्द्रोदय के बाद अर्घ्य दे एवं कथा सुनकर भोजन ग्रहण करे।

करवा चौथ विषयक कथा इस प्रकार है—"यह कथा पांडवों के वनवास काल की है। अर्जुन कई दिनों तक इन्द्रकील पर्वत की ओर से अपने भाइयों के पास न आये। इस पर सभी विशेष कर द्रौपदी बड़ी चिंतित हो गयीं। इत्तफाक से श्री कृष्ण वहाँ उसी समय पहुँच गये। द्रौपदी से मिलने पर जब द्रौपदी ने अर्जुन के सम्बन्ध मे बताया तो श्रीकृष्ण ने कहा कि यों तो अर्जुन के लिए चिन्ता का कोई कारण नही है, फिर भी पति के विषय में चिन्तित स्त्रियों के लिए एक बार पार्वती जी के पूछने पर शिवजी ने करवाचौथ व्रत करने के लिए उनसे कहा था। इस व्रत के करने से पति-पुत्रादि विषयक न केवल चिन्ता दूर होती है, प्रत्युत् उनकी समृद्धि उन्नति भी होती है। पार्वती जी के आग्रह पर शिवजी ने एतद्व्रत विषयक जो कथा कही उसे मैं सुनाता हूँ—प्राचीनकाल में एक योग्य विद्वान् वेद शर्मा इन्द्रप्रस्थ नगरी में निवास करते थे। वेदशर्मा के सात पुत्र थे और एक पुत्री। सातों पुत्रों का विवाह हुआ। पिता ने पुत्री वीरवती का विवाह सुदर्शन नामक एक योग्य शास्त्र पारंगत विद्वान् से कर दिया था। एक बार वीरवती ने अपनी सातों भाभियों के साथ करवा चौथ व्रत रखा। व्रत विधानानुसार सबको चन्द्रोदय के बाद भोजन ग्रहण करना था। किन्तु वीरवती ने क्षुधा-व्याकुल हो चन्द्रोदय के पूर्व ही भोजन कर लिया। इस प्रकार वीरवती का व्रत खंडित हो गया। कुछ दिनों बाद वीरवती का पति सुदर्शन बीमार हुआ। वीरवती ने सुदर्शन के स्वास्थ्य के लिये मृत्युंजय जाप कराया। फलस्वरूप रोग तो कुछ अच्छा हुआ, किन्तु पूर्ण स्वस्थता नहीं आई। उसी समय इन्द्राणी अपनी सखियों के साथ धरती पर व्रतानुष्ठान के लिए आई। वीरवती ने उनसे मिलकर अपने पति के सम्बन्ध में निवेदन किया। इन्द्राणी बोली—तुमने व्रत भंग कर अपने पति की यह दशा कराई है। यदि तुम विधिपूर्वक यह व्रत करो तो तुम्हारा पति

स्वस्थ हो जायगा। वीरवती ने समय आने पर बड़ी निष्ठा से व्रत संपादन किया। व्रत के प्रभाव से उसका पति पहले की तरह स्वस्थ हो गया। फिर तो वह प्रतिवर्ष यह व्रत करती रही।

कथा सुनकर द्रौपदी ने विधि पूर्वक व्रत किया और फलस्वरूप उसके और सबके सारे दुख दूर हो गये।

धनतेरस

कार्तिक मास कृष्णात्रयोदशी को धनतेरस कहा जाता है। यह दिन भगवान् धन्वन्तरि का जन्म दिन होने के कारण उनका जयंती दिन मनाया जाता है। इस त्रयोदशी का सम्बन्ध यमराज से है। इसी दिन से दीपावली का शुभारंभ होता है। *धनतेरस ही को नये बरतन खरीदे जाते हैं, अतः इसे बरतन खरीदने* वाला त्योहार भी माना-कहा जाता है।

धनतेरस को भगवान् धन्वन्तरि के तथा यमराज के पूजन का विधान है। उस दिन हल जुती हुई मिट्टी को दूध में मिलाकर उसे सेमर की डाली में लगाया जाता है पुनः उसे तीन बार अपने शरीर पर फेरा जाता है तथा बाद में कुंकुम का टीका किया जाता है। प्रदोषकाल में यत्र-तत्र सर्वत्र दीपावली मनाई जाती है तथा चतुर्दशी और अमावस्या को देव पूजन श्राद्ध तर्पण, उल्का दर्शन तथा लक्ष्मी पूजन की समाप्ति पर भोजन ग्रहण किया जाता है।

धनतेरस सम्बन्धी कथा इस प्रकार है—यमराज ने एक दिन अपने दूतों से पूछा—"क्या कभी किसी दिन किसी प्राणी के प्राण हरण करते समय बड़ी दया करुणा आई है।" दूत बोले—"जी हाँ। एक प्रतापी राजा था हंस। वह *एक बार शिकार के क्रम में रास्ता भूल कर राजा हेम के राज्य में पहुँच गया।* राजा हेम ने राजा हंस का बड़ा स्वागत सत्कार किया। उसी दिन राजा हेम के यहाँ पुत्र-उत्पन्न हुआ। बच्चे के छठी पूजन के समय देवी ने साक्षात् प्रकट हो बतलाया कि यह बालक विवाह के चार दिन बाद मृत्यु को प्राप्त होगा। जब राजा हंस को यह ज्ञात हुआ तो उस राजा हेम के पुत्र को मृत्यु से बचाने के लिए यमुना जी के एक खोह में छिपा दिया। परन्तु जब राजपुत्र का युवा होने पर विवाह हुआ तो हम लोगों ने विवाह के चार दिन बाद उसके प्राणों का हरण कर लिया। इसके फलस्वरूप वहाँ जो दर्दनाक स्थिति उत्पन्न हुई उससे हम लोग आज भी चिन्तित और दुःखी हैं। अतः महाराज! कृपा पूर्वक इस परिस्थिति से उद्धार पाने

का उपाय बतलाइए। तब यमराज ने धनतेरस के दिन पूजन और दीपदान का विधान बतलाया और बतलाया कि उस दिन जो प्राणी व्रत रखेगा उसकी या उसके यहाँ किसी की असामयिक मृत्यु नहीं होगी।

भगवान धन्वन्तरि पूजन विषयक कथा इस प्रकार है—प्राचीन काल में सुरासुरों ने मिलकर समुद्र मंथन किया। मंथन के फलस्वरूप चौदह रत्न निकले, जिनमें एक अमृत घट के साथ धन्वन्तरि भी थे। उन्होंने रत्नों के वितरण करने वाले भगवान् विष्णु से प्रार्थना की वे उनके (धन्वन्तरि के) निवास की व्यवस्था कर दें तथा यज्ञांश पाने के अधिकारी बना दें। भगवान् विष्णु ने इस पर असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि यज्ञांश का वितरण किया जा चुका है। अतः कुछ भी होना सम्भव नहीं है। हाँ, तुम अपने दूसरे जन्म में अक्षय यश पाओगे तथा यावत् चन्द्र दिवाकर है तुम्हारा नाम धरती पर रहेगा। इतना ही नहीं तुम स्वशरीर से देवत्व प्राप्त करोगे। कहा जाता है कि धन्वन्तरि दूसरे जन्म में काशी के राजा दिवोदास हुए और उन्होंने पार्थिव शरीर से ही देवशरीर की प्राप्ति की।

नरक चतुर्दशी

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी नरक चतुर्दशी के नाम से जानी जाती है। यह दिन छोटी दीपावली का दिन है। इस दिन का सम्बन्ध नरक के स्वामी यमराज से विशेष प्रकार से है।

नरक चतुर्दशी के दिन सूर्योदय से पूर्व जागकर शौचादि से निवृत्त हो तेल लगाकर अथवा हल में लगी हुई मिट्टी, चिड़चिड़ा, भटकटैया और तुम्बी के तेल माथे में लगाकर स्नान ध्यान करना चाहिए। तदुपरान्त यमराज के लिए तर्पण और जलांजलि देने का विधान होना चाहिए। संध्या काल में दीपदान करना चाहिए तथा दीपावली का आयोजन होना चाहिए। नरक चतुर्दशी के दिन ही हनुमान जयंती मनाने का दिन है। हनुमान जयंती मनाने की विधि इस प्रकार है—प्रातः काल हनुमान जी के गुण-गान के साथ शय्या त्याग करें। शौच स्नान के बाद हनुमान जी के मन्दिर में उनकी मूर्ति की पूजा तेल और सिन्दूर से सजाकर सांगोपांग करें। तरह-तरह के पकवान का भोग लगाया जाय एवं रात में मन्दिर में दीपावली मनाई जाय।

यों तो दीपावली महापर्व का दिन कार्तिक अमावस्या है, किन्तु सच तो यह महापर्व धनतेरस से शुरू होकर अमावस्या तक चलता है।

दिनों की दीपावली के विधान का कारण इसलिए है कि भगवान् विष्णु ने इन्हीं तीन दिनों में दैत्यराज बलि से तीनों लोक नापकर लेकर उसे पाताल लोक पठाया था। उस अवसर पर भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर उसे वर माँगने को कहा तो दैत्यराज ने कहा—भगवन्, मुझे आपके दर्शन के बाद कोई और आकांक्षा नहीं बच रही है। किन्तु चूँकि आपका आदेश है अतः मैं यह वर माँगता हूँ—"इन तीन दिनों में जो भी प्राणी दीपदान करेगा वह यम यातना से मुक्त रहेगा एवं उसके घर लक्ष्मी निवास करेगी। भगवान् ने दैत्यराज की प्रार्थना स्वीकार कर ली। तीन दिनों की दीपावली का क्रम तब से चल रहा है।

इसी चतुर्दशी के दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने नरकासुर से दुनिया को राहत दिलाई थी। उन्होंने नरकासुर द्वारा बंदी बनाये जाने वाले सहस्रों राजाओं को रानियों सहित कारागार से मुक्त कराया था। उस दिन उन राजाओं ने दीपावली मनाई थी। इस चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी कहने का एक कारण यह भी है।

दीपावली

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होने वाली दीपावली हमारे बड़े पर्व-त्योहारों में है। इसका महत्त्व रक्षा-बन्धन, विजया-दशमी और होली के समान है। इसमें लक्ष्मी पूजन की प्रमुखता तो है ही, चतुर्दशी और अमावस्या का स्नान, दीपावली और दीपदानादिक सभी अत्यन्त महत्त्व के हैं। इसमें दीपोत्सव के साथ धनत्रयोदशी और नरक चतुर्दशी के उत्सव भी सम्मिलित हैं।

वसंत यदि ऋतुराज है तो शरद ऋतु-रानी। इन दोनों ही में भारतवर्ष का कोना-कोना शोभा-सुषमा से परिपूर्ण हो जाता है। शुष्कता में सरसता और अभाव में पूर्णता इन्हीं दिनों देखी जाती है। इन्हीं सब कारणों से इन दो ऋतुओं में शक्ति पूजा और लक्ष्मी पूजन का आधिक्य और महत्त्व है।

दीपावली यम-दीप-दान से ही प्रारम्भ हो जाती है। यम-दीप-दान त्रयोदशी नके दिन होता है। यम मृत्युदेव हैं। मृत्यु-भय से मुक्ति तथा मृत्यु के कारणों से विमुक्ति के लिए इन्हें दीपदान दिया जाता है। यमदेव इन दीपों से हमारी कुटिलता और मलिनता के साथ-साथ तरह-तरह के कीट और कीटाणुओं को नष्ट कर मृत्यु से अभय बनाकर सुख-सम्पदा देते हैं।

यम त्रयोदशी के बाद नरक चतुर्दशी आती है। कहा जाता है कि एक समय एक राक्षस राजा था, जिसका नाम था नरकासुर। वह था तो विष्णु भक्त किन्तु उसका राज्य अन्यायपूर्ण था। लोगों ने छुटकारे के लिए श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। श्रीकृष्ण आए और उन्होंने इसी दिन इस असुरराज पर विजय प्राप्त की। तब से यह दिन जयोत्सव के रूप में मनाया जाता है। इस सम्बन्ध में एक दूसरी कथा राजा बलि की है। बलि भी असुर राजा था। वह अन्याय से इन्द्र के राज्य को हड़पने लगा। इन्द्र ने विष्णु की आराधना की। और विष्णु वामन रूप में अपने लायक भूमि माँगने राजा बलि के पास पहुँचे। राजा ने तीन डेग पृथ्वी माप लेने के लिए कहा। पृथ्वी मापन समय वामन अवतार त्रिविक्रम अवतार हो गया। उन्होंने दो डेग में पृथ्वी और आकाश माप लिए और तीसरे में लात मारकर राजा बलि को पाताल में ढकेल दिया। चूँकि वह बड़ा विष्णु भक्त था अतः उसे वरदान दिया। त्रयोदशी उत्सव उसी दिन की याद में विष्णु भक्ति और वर-याचना के लिए होता है। उस दिन दीपदान के साथ श्राद्ध किया जाता है और यज्ञ किया जाता है।

दीपावली का त्योहार कई नामों से जाना जाता है। कहीं इसे दीवाली, कहीं दीपमाला, कहीं कौमुदी और कहीं सुख-सुप्ति के नाम से पुकारा जाता है। यह उत्सव लक्ष्मी के आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तीनों स्वरूप प्रकट करने वाला है। उस अवसर पर भगवती लक्ष्मी के इन रूपों की सांगोपांग पूजा होती है। इसमें झोपड़ियों से महलों तक की सफाई से लेकर सजावट तक करके भगवती का आह्वान किया जाता है। इस आह्वान में राजा रंक-फकीर, आबाल-वृद्ध-वनिता सभी बड़े उल्लास और अपूर्व भक्ति से भाग लेते हैं। जग-मगाती दीपमालिकाओं से हमारे अन्तर और बाह्य अन्धकार दूर हो जाते हैं और वैभव जगमगा उठते हैं।

हमारे साहित्य में इस महोत्सव का बड़ा निर्मल वर्णन मिलता है। इसकी गौरव-गरिमा का बड़ा भव्य उल्लेख मिलता है। कार्तिक अमावस्या के वैभव सुख का क्या कहना इसी दिन भगवान् विष्णु क्षीरोदधि की तरल तरंगों पर सुख से सोते हैं। इसी दिन भगवती लक्ष्मी दैत्य भय से विमुक्त हो कमलांक में विरा-जती हैं। जब भगवान् और लक्ष्मी की यह गति है तब मानव-सुख-लाभ का क्या कहना ?

दीपावली के दिन अनाहार का विधान है। शाम को दीपदान के बाद ब्राह्मण-भोजन और पितरों को पिण्डदान करना चाहिए। और तब सबन्धु-बान्धव भोजन करना चाहिए।

उस दिन नृत्य-वाद्य-क्रीड़ा-कौतुक एवं स्वस्ति-मंगल पाठ का भी विधान है। दीपमाला जलाते समय कोई स्थान खाली नहीं रहना चाहिए। उस दिन दीप सजाने के बाद दीप-मालिका के दर्शन का भी विधान है। इस दर्शन से पाप का नाश और पुण्य की प्राप्ति होती है। यह दर्शन मित्र-परिवार सहित होना चाहिये।

दीपदान के बाद कमलशोभिता लक्ष्मी को जो स्वयं ज्योतिरूप हैं, जो सूर्य चन्द्र और तारिका स्वरूपा हैं, जो ज्योतियों की ज्योति हैं—जगाया जाता है और उनसे वर्ष भर साथ रहने का वरदान प्राप्त किया जाता है। कहा जाता है कि उस दिन लक्ष्मी आधी रात तक घूमती रहती हैं और अच्छे घरों तथा पवित्र आदमियों को देखकर ठहर जाती हैं। यही कारण है कि उस रात्रि को सब कोई सब तरह से सज्जित और पवित्र तथा शुद्ध होकर लक्ष्मी का स्वागत, अभिनन्दन करते हैं। उस दिन अखण्ड दीपक जलाकर लक्ष्मी के पथ को प्रशस्त और प्रकाशमान रखा जाना चाहिए।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि ब्रह्माण्ड में आध्यात्मिक शक्तिधारी पुरुष या महात्मा विचरण करते रहते हैं। ये आत्माएँ विशेष लोगों पर विशेष स्थानों में अपनी महती शक्ति की वृष्टि कर देती हैं। यही कारण है कि दीपावली के प्रातःकाल जब ग्रह-नक्षत्र भी एक विशेष स्थान और अवस्था में आ जाते हैं, लोग तिल-तेल लगाकर साधारण जल को गंगा जल मानकर स्नान करते हैं और उन दिव्यात्माओं की दिव्यशक्ति का कुछ अंश प्राप्त करते हैं। उस दिन स्नान भोजन के बाद एक दूसरे से भाई-भाई की तरह मिलते हैं और मिलन-आलिंगन के साथ-साथ पान-सुपारी का आदान-प्रदान करते हैं। इस प्रकार सबके-सब दिव्य शक्ति प्राप्त कर बन्धुता और भ्रातृत्व की अमर स्थापना करते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि इस अवसर पर प्रारम्भ होने वाला काम अवश्यमेव सफल होता है। इसीलिए इसी दिन लक्ष्मीपूजा के साथ-साथ नया खाता खोलते हैं—नया काम शुरू करते हैं और नयी योजना कार्यान्वित करते हैं।

दीपावली धनिकों का त्योहार कहा जाता है। उस दिन लक्ष्मी पूजन होता है और लक्ष्मी धनिकों की होती है। किन्तु यह रंकों का भी त्योहार है। कारण उस दिन लक्ष्मी घर-घर घूमती हैं। रंक भी अपने घर में लक्ष्मी को रखना चाहते हैं। ऐसा वे पूजा उत्सव करके ही कर सकते हैं। यही कारण है कि इस उत्सव में सबके-सब अति भक्तिभाव से अनुपम आदर और शुचिता से भाग लेते हैं।

यों तो दीपावली सर्वत्र बड़े ठाटबाट से मनायी जाती है किन्तु इस सम्बन्ध में बम्बई और मैसूर की प्रसिद्धि सारे संसार में है। अधुना बिजली के कारण किसी भी बड़े नगर की दीवाली अपना सानी नहीं रखती। चूँकि यह महोत्सव हर्ष-उल्लास एवं सफलता आशा का है अतः इसे मनाने में कोई कमी नहीं दीखती है। इसमें सारा भारतवर्ष भाग लेता है और इसे अति प्रसिद्ध राष्ट्रीय त्योहार के रूप में मनाता है।

अन्नकूट

कार्तिक मास की शुक्ला प्रतिपदा को अन्नकूट पर्व महामहोत्सव मनाने का विधान द्वापर युग से आ रहा है। यह वैष्णवों का मुख्य पर्व माना जाता है। इस पर्व का विष्णु-मन्दिरों में विशेष आयोजनों के साथ मनाया जाना देखा गया है। व्रज-भूमि में इस पर्व को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। इसका कारण यह है कि व्रज भूमि भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-भूमि, कर्मभूमि और लीला-भूमि रही है। इस पर्व का सम्बन्ध गोवर्द्धन-पूजा से है और ऐसा समझा जाता है इस पर्व का प्रारम्भ गोवर्द्धन-पूजा, जो कि इन्द्र पूजा के स्थान पर शुरु हुई थी, हुआ था। अन्नकूट पर्व के अवसर पर गाय के गोबर से गोवर्द्धन पर्वत बनाया जाता है तथा भाँति-भाँति के व्यंजन विपुलता के साथ तैयार होता है और भात का पहाड़ बनाया जाता है। यही कारण है कि यह पर्व गोवर्द्धन-पूजा तथा अन्नकूट पर्व कहा जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण के समय व्रज-भूमि धन्य-धन्य थी। उन दिनों व्रजवासी आनन्द महासागर में डुबकियाँ लगाते थे। एक बार श्रीकृष्ण ने देखा कि सारा व्रज किसी महान् महोत्सव की तैयारी में लगा है। कारण पूछने पर ज्ञात हुआ कि इन्द्र-पूजा की तैयारी है। चूँकि इन्द्र की कृपा से वर्षा होती है, कृषि कार्य सफलता से सम्पन्न होता है तथा वहाँ के आदमियों और गौओं की सुरक्षा होती है, सम्पदा बढ़ती है। तब इस पूजा में विशेष मात्रा में वलि दी जाती थी जो श्रीकृष्ण को कतई पसन्द नहीं था। फलतः श्रीकृष्ण ने वहाँ की सारी जनसंख्या में पशु-वलि के अनौचित्य तथा इन्द्र पूजा की जगह गोवर्द्धन पूजा के महत्त्व बतलाये। उन्होंने कहा—'सच तो यह है कि हमारी व्रजभूमि के साक्षात् देवता पर्वतराज गोवर्द्धन हैं, जिनकी महती कृपा से हमें सर्वस्व प्राप्त है। इन्द्र को हम लोगों ने देखा तक नहीं, किन्तु गोवर्द्धन तो सत्य है, साकार है।

श्रीकृष्ण के उपर्युक्त प्रस्ताव के समर्थन विरोध दोनों हुए। किन्तु बहुमत ने उनके प्रस्ताव के सत्य और तर्क का दृढ़ता से समर्थन किया। इन्द्र की पूजा, जिसमें बलि प्रदान पर अधिक जोर था, बन्द हुई। गिरिराज गोवर्द्धन की पूजा सफल तैयारी तथा समस्त आस्था के साथ की गई।

जब देवराज इन्द्र को देवर्षि नारद से पूजा बन्दी का समाचार मिला, तो उनका दुरभिमान जागा। उन्हें इस प्रयत्न में अपमान का अनुभव हुआ। फलस्वरूप उन्होंने तत्काल मेघों को आदेश दिये कि वे समस्त ब्रज-मण्डल को वर्षा के जल में डुबो दें। फिर क्या था—भीषण वर्षा हुई—देखते-देखते भयंकर बाढ़ आई जिसमें सारा ब्रज-मण्डल डूबने उतराने लगा। सब के घर बार चौपट हो गये—माल-मवेशी चौपट हुई—खेतीबारी विनष्ट हो गई—सबके सब हाहाकार करने लगे।

इन्द्र कोप जनित विनाश से विचलित हो सारी ब्रज-मण्डली श्रीकृष्ण के पास पहुँची और उन्हें त्राहिमाम् संदेश दिया। श्रीकृष्ण ने जो उस समय स्वयं चिन्तित थे, सबको निर्देश दिया कि सबके सब गिरिराज गोवर्द्धन के पास चलें। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी एक उँगली पर गोवर्द्धन को उठा लिया और सारी जनसंख्या को गोवर्द्धन छतरी से ढँक कर सबको त्राण दिलाया। इन्द्र अपने इस दुष्कर्म पर लज्जित हुआ—उसने पश्चाताप किये तथा श्रीकृष्ण की महिमा जानते हुए उनकी स्तुति-विनय की एवं अपने कुकर्म के लिए पश्चाताप पूर्वक क्षमा माँगी। श्रीकृष्ण कुल सात दिनों तक गोवर्द्धन को उठाये रहे और अन्त में गिरिराज को भूमि पर उतारा तो सर्वत्र आनन्द छा गया। गोवर्द्धन पूजा इसी पुण्य स्मरण के लिए होती है। आज भी यह पूजा अन्नकूट के रूप में श्रीकृष्ण मन्दिरों में प्राचीन गरिमा-महिमा से मनाई जाती है।

अन्नकूट पर्व मनाने की विधि इस प्रकार—कार्तिक सुदी प्रतिपदा को शौच-मंजन-स्नान से निवृत्त हो भगवान् श्रीकृष्ण के उदात्त जीवन तथा उनके बहुरंगी चरित्र के चिन्तन और मनन के बाद नित्य नैमित्तिक पूजा से निश्चित हो मन्दिर के चौक में गोवर्द्धन पर्वत का प्रतीक गाय के पवित्र गोबर से गोवर्द्धन पर्वत बनाया जाता है। गौओं को शुद्धता और श्रद्धा से स्नान कराया जाता है तथा पर्वत और गायों के साथ बड़ी भाव-भक्ति से ... होती है। ... पर नाना प्रकार के व्यंजन खीर से लेकर ... ... र ... पुनिया तक भोग नैवेद्य के लिए तैयार किये ... खड़ा किया जाता है। पूजा होती है—... हो... होता है और कृषि प्रधान देश भारत ... लिए ... की कामना की जाती है।

भैयादूज

कार्तिक शुक्ला द्वितीया को भैयादूज पर्व बड़ी महिमा गरिमा, शुद्धता-पवित्रता तथा श्रद्धा विश्वास के साथ मनाया जाता है। यह भैयादूज पर्व भ्रातृ-द्वितीया की संज्ञा से भी सम्बोधित होता है। इसी पर्व के दिन चित्रगुप्त पूजा भी होती है। लिखने-पढ़ने की सामग्री की यथा कलम-दावात, खाता-किताब की पूजा बड़े उत्साह तथा बड़ी तत्परता से की जाती है। इस अवसर पर बहन अपने भाई को अपने घर बुलाकर आदर सत्कार करती, टीका करती है तथा भाँति-भाँति के व्यंजन खिलाती है एवं इसके अलावा भाई के कल्याण एवं उन्नति वृद्धि के निमित्त नाना प्रकार के मांगलिक विधान करती है। भाई भी बहन को बढ़िया-बढ़िया भेंट देता है तथा बहन की मंगल कामना करता है। मथुरा में इस पर्व को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। उस दिन यमुना में भाई-बहन का संग स्नान दोनों के लिए महान् कल्याणकारी है।

भैयादूज विषयक एक बड़ी मनोरंजक लोमहर्षक पौराणिक कथा इस प्रकार है—भगवान् सूर्य को अपनी पत्नी संज्ञा से दो सन्तानें एक पुत्र यमराज तथा दूसरी पुत्री यमुना हुई। संज्ञा अपने पतिदेव सूर्य के तेज को असह्य पाकर अपनी स्वनिर्मित छाया को अपनी सन्तान की देखरेख का भार दे कहीं लोप हो गई। यमुना और यमराज में बड़ा स्नेह था। बहन यमुना प्रायः भाई यमराज के घर जाती और भाई से उसके सुख-दुःख की बातें करती। वह बराबर भाई को अपने घर आने के निमन्त्रण देती। किन्तु ऐसा संयोग नहीं होता कि वह बहन के घर जा सके। इत्तफाक से एक बार ठीक कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन भाई यमराज बहन यमुना के घर पहुँच गया। बहन यमुना ने हर्षित पुलकित हो अभूतपूर्व स्वागत सत्कार किया। नाना प्रकार के व्यंजन खिलाये और टीका किया। भाई बहन की आदर-सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हो उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ उसने यमुना बहन को विविध भेंट पुरस्कार दिये। जब भाई विदा होने लगा तो उसने बहन से मनमानी वस्तु माँगने का अनुरोध किया। बहन यमुना जो बड़ी भोलीभाली सीधी-सादी परोपकारिणी थी बोली यों तो बहन को भाई के बाद किसी और वस्तु को पाने की कामना नहीं रहती है, फिर भी यदि भाई कुछ देना ही चाहता है तो वह यही दे कि भाई बहन के घर आज दिन के समान ही प्रति वर्ष इसी तिथि पर इसी दिन इसी प्रकार आया करे एवं भाई बहन के स्वर्गीय प्रेम को शाश्वत बनाये रखे। इसके सिवा इसी प्रकार जो कोई भाई जहाँ कहीं हो अपनी बहन के घर जा कर उसका आतिथ्य स्वीकार करे तथा उसे भेंट पुरस्कार दे, उसकी तमाम कामनायें अभिलाषायें परिपूर्ण होती रहें एवं वह मृत्यु भय से

श्रीकृष्ण के उपर्युक्त प्रस्ताव के समर्थन विरोध दोनों हुए। किन्तु बहुमत ने उनके प्रस्ताव के सत्य और तर्क का दृढ़ता से समर्थन किया। इन्द्र की पूजा, जिसमें बलि प्रदान पर अधिक जोर था, बन्द हुई। गिरिराज गोवर्द्धन की पूजा सफल तैयारी तथा समस्त आस्था के साथ की गई।

जब देवराज इन्द्र को देवर्षि नारद से पूजा बन्दी का समाचार मिला, तो उनका दुरभिमान जागा। उन्हें इस प्रयत्न में अपमान का अनुभव हुआ। फलस्वरूप उन्होने तत्काल मेघों को आदेश दिये कि वे समस्त व्रज-मण्डल को वर्षा के जल मे डुबो दें। फिर क्या था—भीषण वर्षा हुई—देखते-देखते भयंकर बाढ आई जिसमे सारा व्रज-मण्डल डूबने उतराने लगा। सब के घर बार चौपट हो गये—माल-मवेशी चौपट हुई—खेतीबारी विनष्ट हो गई—सबके सब हाहाकार करने लगे।

इन्द्र कोप जनित विनाश से विचलित हो सारी व्रज-मंडली श्रीकृष्ण के पास पहुँची और उन्हें त्राहिमाम् संदेश दिया। श्रीकृष्ण ने जो उस समय स्वयं चिन्तित थे, सबको निर्देश दिया कि सबके सब गिरिराज गोवर्द्धन के पास चलें। कहा जाता है कि उन्होने अपनी एक उँगली पर गोवर्द्धन को उठा लिया और सारी जनसंख्या को गोवर्द्धन छतरी से ढंक कर सबको त्राण दिलाया। इन्द्र अपने इस दुष्कर्म पर लज्जित हुआ—उसने पश्चात्ताप किये तथा श्रीकृष्ण की महिमा जानते हुए उनकी स्तुति-विनय की एवं अपने कुकर्म के लिए पश्चात्ताप पूर्वक क्षमा मांगी। श्रीकृष्ण कुल सात दिनों तक गोवर्द्धन को उठाये रहे और अन्त मे गिरिराज को भूमि पर उतारा तो सर्वत्र आनन्द छा गया। गोवर्द्धन पूजा इसी पुण्य स्मरण के लिए होती है। आज भी यह पूजा अन्नकूट के रूप मे श्रीकृष्ण मन्दिरो में प्राचीन गरिमा-महिमा से मनाई जाती है।

अन्नकूट पर्व मनाने की विधि इस प्रकार—कातिक सुदी प्रतिपदा को शौच-मंजन-स्नान से निवृत्त हो भगवान् श्रीकृष्ण के उदात्त जीवन तथा उनके बहुरंगी चरित्र के चिन्तन और मनन के बाद नित्य नैमित्तिक पूजा से निश्चिन्त हो मन्दिर के चौक में गोवर्द्धन पर्वत का प्रतीक गाय के पवित्र गोबर से गोवर्द्धन पर्वत बनाया जाता है। गौओ को शुद्धता और श्रद्धा से स्नान कराया जाता है तथा पर्वत और गायों के साथ बड़ी भाव-भक्ति से पूजा होती है। इस अवसर पर नाना प्रकार के व्यंजन खीर से लेकर खिचड़ी तक तथा रसगुल्ले से लेकर बुनिया तक भोग नैवेद्य के लिए तैयार किये जाते हैं तथा भात का पर्वत (कूट) खड़ा किया जाता है। पूजा होती है—कथा होती है—भजन होता है—कीर्तन होता है और कृषि प्रधान देश भारत के लिए कृषि सहित सर्वविकास के वरदान की कामना की जाती है।

भैयादूज

कार्तिक शुक्ला द्वितीया को भैयादूज पर्व बड़ी महिमा गरिमा, शुद्धता-पवित्रता तथा श्रद्धा विश्वास के साथ मनाया जाता है। यह भैयादूज पर्व भ्रातृ-द्वितीया की संज्ञा से भी सम्बोधित होता है। इसी पर्व के दिन चित्रगुप्त पूजा भी होती है। लिखने-पढ़ने की सामग्री की यथा कलम-दावात, खाता-किताब की पूजा बड़े उत्साह तथा बड़ी तत्परता से की जाती है। इस अवसर पर बहन अपने भाई को अपने घर बुलाकर आदर सत्कार करती, टीका करती है तथा भाँति-भाँति के व्यंजन खिलाती है एवं इसके अलावा भाई के कल्याण एवं उन्नति वृद्धि के निमित्त नाना प्रकार के मांगलिक विधान करती है। भाई भी बहन को बढ़िया-बढ़िया भेंट देता है तथा बहन की मंगल कामना करता है। मथुरा में इस पर्व को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। उस दिन यमुना में भाई-बहन का संग स्नान दोनों के लिए महान् कल्याणकारी है।

भैयादूज विषयक एक बड़ी मनोरंजक लोमहर्षक पौराणिक कथा इस प्रकार है—भगवान् सूर्य की अपनी पत्नी संज्ञा से दो सन्तानें एक पुत्र यमराज तथा दूसरी पुत्री यमुना हुई। संज्ञा अपने पतिदेव सूर्य के तेज को असह्य पाकर अपनी स्वनिर्मित छाया को अपनी सन्तान की देखरेख का भार दे कहीं लोप हो गई। यमुना और यमराज में बड़ा स्नेह था। बहन यमुना प्रायः भाई यमराज के घर जाती और भाई से उसके सुख-दुःख की बातें करती। वह बराबर भाई को अपने घर आने के निमन्त्रण देती। किन्तु ऐसा संयोग नहीं होता कि वह बहन के घर जा सके। इत्तफाक से एक बार ठीक कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन भाई यमराज बहन यमुना के घर पहुँच गया। बहन यमुना ने हर्षित पुलकित हो अभूतपूर्व स्वागत सत्कार किया। नाना प्रकार के व्यंजन खिलाये और टीका किया। भाई बहन की आदर-सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हो उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ उसने यमुना बहन को विविध भेंट पुरस्कार दिये। जब भाई विदा होने लगा तो उसने बहन से मनमानी वस्तु माँगने का अनुरोध किया। बहन यमुना जो बड़ी भोलीभाली सीधी-सादी परोपकारिणी थी बोली यों तो बहन को भाई के बाद किसी और वस्तु को पाने की कामना नहीं रहती है, फिर भी यदि भाई कुछ देना ही चाहता है तो वह यही दे कि भाई बहन के घर आज दिन के समान ही प्रति वर्ष इसी तिथि पर इसी दिन इसी प्रकार आया करे एवं भाई बहन के स्वर्गीय प्रेम को शाश्वत बनाये रखे। इसके सिवा इसी प्रकार जो कोई भाई जहाँ कहीं हो अपनी बहन के घर जा कर उसका आतिथ्य स्वीकार करे तथा उसे भेंट पुरस्कार दे, उसकी तमाम कामनायें अभिलाषायें परिपूर्ण होती रहें एवं वह मृत्यु भय से

मुक्त रहे। यम ने यमुना की इस प्रार्थना को स्वीकार किया और तभी से भैया-दूज, यमद्वितीया, भ्रातृद्वितीया की यह पावन प्रथा, जो सद्भावना का चिरन्तन प्रवाह है तथा कपट विहीन प्रेम का अनवरत निर्झर है, अविराम गति से आ रही है।

भैयादूज विषयक एक अत्यन्त मनोहारिणी लोक कथा इस प्रकार कही जाती है—सात बहनें थी और एक था भाई। सब में बड़ा-प्रेम बड़ा-स्नेह। एकलौते भाई पर बहनों की अत्यधिक कृपा थी। जब भाई बड़ा हुआ तो उसका विवाह होने लगा। माता ने पुत्र से कहा कि वह अपनी बहनों को विदा करा लाये। पुत्र ऐसा करने को राजी तो हुआ लेकिन चूँकि छोटी बहन को छोड़ कर और सबके विवाह दूर-दूर हुए थे। अतः वह मात्र छोटी बहन के घर पहुँच सका। जिस दिन भाई बहन को लिवाने उसके घर पहुँचा भैयादूज का दिन था। बहन अपने भाई की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा में रत थी। उसने पूजा समाप्त की और भाई को जो अब तक चुपचाप खड़ा था, घर के भीतर ले जाकर स्वागत-सत्कार कर नाना प्रकार के व्यंजनों का भोजन कराया और आने का प्रयोजन पूछा। भाई बोला—"फलाँ तिथि को मेरा विवाह है और तुम्हें लिवाने के लिए यहाँ आया हूँ।" बहन प्रसन्नता प्रकट करती हुई बोली—"भाई तुम कल चले जाओ मैं कल के बाद परसों आ रही हूँ। दूसरे दिन रात रहते बहन ने भाई के लिए पूड़ी बनाने के लिए आटा पीसा। दुर्भाग्य से उस आँटे में विषैले सर्प की सूखी हड्डी भी पिस गई। बहन ने पूड़ियाँ छान कर भाई को "रास्ते में कलेवे के लिए दी तथा उनमें से एक पूड़ी रख छोडी। भाई के जाने के बाद बहन ने वहाँ रखी पूड़ी को एक कुत्ते को खिलाया। कुत्ता पूड़ी खाते ही मर गया। अब तो बहन बहुत घबड़ायी। बहन सब कुछ छोड़-छाड कर बेतहाशा भाई के पीछे-पीछे दौड़ चली। बहुत दूर जाने के बाद बहन ने देखा कि उसका भाई एक तरु की छाया में निश्चिन्त सो रहा है और पास ही एक डाली में बहन की दी हुई पूड़ियां एक पोटली में लटक रही है? बहन ने जल्दी से उन पूड़ियों को जमीन में गाड़ दिया तथा भाई के खाने के लिए अपने साथ लायी और वस्तु रख दी? जब भाई की नींद खुली तो वह बहन को अपने पास पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। इधर भाई खाना खाने लगा तथा उधर बहन भाई के लिए पानी लाने पास के सरोवर पर पहुँची। वहाँ बहन ने देखा कि एक बढ़ई साही के काँटे जमा कर रहा है। बहन को बढ़ई का ऐसा करना व्यर्थ मालूम पड़ा और बहन ने उससे साश्चर्य इस व्यर्थ काम का प्रयोजन पूछा। बढ़ई ने बड़े धीरज से उत्तर दिया—"बहन! ये काँटे उन सात बहनों के एकलौते भाई के लिए है जिसका विवाह होनेवाला है और जिसकी अकाल मृत्यु सन्निकट है। इन काँटों

से उस भाई की प्राण-रक्षा हो सकेगी।" बहन ने तब पूछा—"भाई, यह अकाल मृत्यु कैसे होगी और इन काँटों से उसकी रक्षा किस प्रकार होगी ?" बढ़ई ने जवाब दिया—"अभी-अभी भाई को साँप काट सकता है, जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है ? किन्तु यदि कोई इन काँटो को ले जाकर गालियाँ पढ़ते हुए उसके मुँह से छुला देगा तो वह बच सकता है। इसी तरह जब वह विवाह करने जायगा तो उसके ऊपर घर का दरवाजा गिर सकता है और वह मौत को प्राप्त हो सकता है। किन्तु यदि कोई दरवाजे पर स्वर्ण-ध्वज चढ़ा देगा तो वह बच सकता है। इसी प्रकार जिस समय उसकी भांवर पड़ती रहेगी एक दुर्दान्त सिंह उसे उठाकर भाग सकता है। किन्तु यदि हरे जौ का फूला उसके सामने डाल देगा तथा यह एक काँटा उसके विवाह मंडप में खोस देगा तो सिंह भाग जा सकता है और वह दुलहा मरने से बच जा सकता है। बढ़ई की इन रोमांचकारी बातो को सुनकर बहन ने कहा—भाई ! तुम जिसके लिए ये काँटे एकत्र कर रहे हो, मैं उसी की बहन हूँ। हम सात बहनों मे वही अकेला भाई है। अभी-अभी वह विषैली पूड़ी खाने से बचा है। तुम्हारा कहना सत्य है। यदि तुम इन काँटों को मुझे देने की कृपा करो तो मैं तुम्हारे कहे उपायों से भाई की रक्षा कर सकूँगी। बढ़ई ने बहन की बातें सुनीं और बड़ी कृपा-प्रसन्नता से ये तीन काँटे बहन को दे दिये। काँटे पाकर बहन गाली पढ़ती हुई भाई के पास पहुँची और काँटो को मुँह से छुला दिया। भाई को बहन का यह दुर्व्यवहार अच्छा नही लगा। उसके बार बार पूछने पर बहन ने कोई बात न बताई और वह इधर-उधर की बातें करती रही। भाई बहन को पागल समझ मन मसोस कर रह गया। दोनों घर पहुँचे। वहाँ जब लगन चढ़ाने का समय आया तो बहन पुनः भाई को गालियाँ पढ़ने लगी और उसे तरह-तरह के शाप-अभिशाप देने लगी। बहन इस बात पर अड़ गई कि लगन पहले उसके हाथ पर रखी जाएगी और बाद में भाई के हाथ पर। बहन के चीखने-चिल्लाने के कारण ऐसा ही किया गया। बहन ने उसी में एक काँटा खोंस दिया। बाद में लगन भाई के हाथ मे रखी गई। इस प्रकार बहन भाई के प्रत्येक विवाह-कार्य में पहले स्वयं भाग लेती रही और बाद मे भाई को भाग लेने दिया। बहन भाई की बारात में सम्मिलित हुई और भाई के ससुर के घर पहले पहुँच कर बहन ने दरवाजे पर स्वर्ण छत्र चढाया। संयोगवश जिस समय भाई का विवाह हो रहा था, थकी-माँदी बहन जनवासे में सो रही थी। वहाँ मण्डप मे भाई सहसा बेहोश हो गया। लोगो ने दौड़ कर बहन को इस दुर्घटना की खबर दी। खबर पाकर बहन पागल बनी तरह-तरह की गालियाँ पढ़ती मण्डप में पहुँची ही थी कि भयानक सिंह गर्जन करता हुआ भाई की ओर झपटा। बहन ने जो पहले से तैयार थी चट से हरे जौ का फूला डाल दिया और

मण्डप में काँटा खोंस दिया। सिंह वापस लौट गया और बहन भाई का विवाह सम्पन्न कर खुशी-खुशी अपने घर आ गई।

घर आने पर भाई-भाभी के साथ-साथ सोने का अवसर आया। तब बहन उन दोनों के बीच में सोने के लिए जिद् पर अड़ गई। हो-हल्ला हुआ किन्तु इससे बचने का कोई उपाय नहीं था। बहन की इच्छा पूरी की गई। बहन भाई-भाभी दोनों के बीच में सोई। जिस समय भाई-भाभी दोनों सो रहे थे। बहन जाग रही थी। बहन ने देखा—एक भयंकर सांप भाई की ओर उसे काटने के लिए बढ़ा। बहन ने उसे तुरन्त मार दिया और उसे एक बरतन में ढाँप कर नीचे रख दिया। इस प्रकार बहन अपने सारे कर्त्तव्य निभा कर निश्चिन्त होकर सो रही। दूसरे दिन जब कि घर के लोग बहन के पागलपन से परेशान उसे विदा करने की सारी तैयारी पूरी कर चुके तो देखा गया कि वह सो रही है। उसे जगाने की पूरी कोशिश की गई किन्तु उसका सोना जारी रहा। अन्त में दुपहर ढलने पर बहन सहसा जाग गई। घर के लोगों ने देखा कि वह पागल नहीं है। आश्चर्यित लोगों ने जब उसकी हरकतों के सम्बन्ध में पूछताछ शुरू की तो उसने सारी बातें आदि से अन्त तक बतलाई और प्रमाण में रात में मारे गये सांप को दिखलाया। बहन की बातें सुनकर घर के सभी लोग आनन्द-विह्वल हो उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे एवं इस प्रकार भाई-बहन के सच्चे स्वर्ग के प्रेम को जय-जयकार करने लगे।

भैया दूज मनाने का विधि-विधान पुस्तकों में इस प्रकार है—प्रत्येक बहन भैया-दूज के दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो अपने भाई के दीर्घ स्वस्थ-जीवन तथा कल्याण मंगल की वृद्धि की कामना करती हुई अक्षत-कुंकुम से अष्टदल कमल की रचना कर संकल्प करे तथा मृत्यु देवता यमराज की सांगोपांग पूजा करे। बाद में भाई का सविनय स्वागत सत्कार कर टीका काढ़े और प्रेम-पूर्वक दिव्य भोजन कराये।

हमारे देश में विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार से पर्व मनाने की परम्परा है। कुछ स्थानों में बहनें दरवाजे पर भाई-भाभी की प्रतिमायें बनाती हैं। उन्हें सजाती-सँवारती हैं। पूजा-सामग्री से उनकी भक्ति-भाव से पूजा करती हैं। पूजा के बाद मिष्ठान्न और पकवान का भोग लगाया जाता है। फिर बाहर दरवाजे की पूजा होती है। घर के प्रवेश द्वार पर देहरी के नीचे गोबर से चौकोर वेदी की रचना होती है। चारों कोनों पर चार पुतलियाँ तथा बीच में एक पुतली मतलब पाँच पुतलियाँ सजाई-बनाई जाती हैं। फिर घर-गृहस्थी सम्बन्धी चूल्हा-चक्की, बटलोई आदि गोबर की बनी सामग्री इधर-उधर सजाई जाती हैं।

तदनन्तर भाई-भाभी की प्रतिमाओं की विधिपूर्वक पूजा की जाती है पुनः समुपस्थित भाई की बहन द्वारा पूजा की जाती है और प्रासंगिक कथा कही-सुनी जाती है। कथा की समाप्ति पर बहन मूसल नीचे चला-चला कहती है—जो मेरे भाई को जले कटे उसका मुँह तोड़ दिया जाय। बाद में बहन भाई को सप्रेम भोजन कराती है और हल्दी से टीका करती है। पश्चात् भाई बहन को प्रणाम करता है तथा उसे भेंट पुरस्कार देता है।

कुछ स्थानों पर भैयादूज के दिन एक विचित्र प्रथा का पालन किया जाता देखा जाता है। उस दिन प्रातःकाल बहन एक मनुष्याकृति बनाती है। उसकी छाती पर ईंट रखती है और अपने भाई का अहित अमंगल सोचने वाले को भद्दी-भद्दी गालियाँ पढ़ती है। इसके बाद बहन गुम भटकटैया तथा चना लेकर शाप देती है और अपनी जीभ को भटकटैया के काँटे से दागती है। फिर यही ही तमाम सामग्री गोधन बाबा के स्थान पर भेजी जाती है। वहाँ गोधन कूटते समय अनाप-शनाप बकती हुई बहनें अपने भाइयों की मंगल कामना करती है। अन्त में बहनें वहाँ से चरणामृत लेकर, पीकर अपने घर जाती है।

भैयादूज मनाने की इन विचित्र प्रथाओं में एक बात स्पष्ट देखी जाती है कि सबका उद्देश्य भाई की मंगल-कल्याण-कामना है। सच पूछा जाय तो यह कहना पड़ेगा कि भैयादूज भाई-बहन के अचल अविचल शाश्वत चिरंतन प्रेम का मंगल कल्याणदायक पर्व है।

छठ

कार्तिक शुक्ला षष्ठी को छठ व्रत का विधान है। यह सूर्य षष्ठी अथवा डाला छठ व्रत से भी जाना जाता है। यह व्रत संतान की दीर्घायु के लिए सम्पादित होता है।

छठ व्रत में तीन दिनों का उपवास रखा जाता है। व्रतधारिणी स्त्रियाँ पंचमी के दिन मात्र एक बार अलोना भोजन करती हैं। दूसरे दिन षष्ठी को निर्जल उपवास किया जाता है। सांध्य-वेला में जलाशय के पास भाँति-भाँति के फल खास कर नीबू, नारियल और केला तथा मिठाइयाँ और पक्वान्न सूप और डालों में सजाकर पूजा के लिए ले जाये जाते हैं। वहाँ डूबते हुए सूर्य भगवान् को अर्घ्य दिया जाता है। इधर भजन और कीर्तन चलते रहते हैं। दूसरे दिन

प्रातःकाल सूर्योदय के काफी पहले सारे सामान के साथ लोक गीत गाते हुए पिछले दिन वाले स्थान पर सब जमा होते हैं और वहाँ स्नान के बाद उगते हुए सूर्य भगवान् को अर्घ्य देने के बाद व्रत की समाप्ति होती है। बाद में प्रसाद बाँटा जाता है और फिर सात्विक भोजन किया जाता है।

गोपाष्टमी

कार्तिक शुक्ला अष्टमी गोपाष्टमी या गोष्टमी कही जाती है। इसका सीधा सम्बन्ध गोपालन से है। कृषि प्रधान देश भारत के लिए पशुपालन का कितना महत्त्व है यह किसी से छिपा नहीं है। श्रीकृष्ण के एक वाक्य—"मैं गौवों के बीच रहता हूँ।" इस बात का प्रमाण है कि श्री कृष्ण के जीवन से गौवों का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है, जिसकी कोई तुलना नहीं। कृषि प्रधान देश भारत के लिए गौवें एक अवश्य है। हम सबके सब खेती पर निर्भर करते हैं। इस खेती पर ही देश का आर्थिक ढाँचा खड़ा होता है। ऐसी हालत में उस दिन भारत, भारत नहीं रह जायगा, जिस दिन भारत के लोग खेती छोड़ देंगे। सारा देश खेती के लिए गौवों का मूल्य जानता है। यही कारण है कि गोपाष्टमी व्रत उन लोगों के लिए जो खेती में किसी न किसी रूप में लगे है, अनिवार्य है।

गोपाष्टमी व्रत रखने वाले गोष्टमी के दिन शुद्ध पवित्र हो गौवों को धोते नहलाते हैं। फिर उनकी सांगोपाग पूजा करते है, उनके लिए रंगठीय के साथ नयी रस्सी और नयी घंटी तथा गौवों के चरवाहे का भी यथोचित आदर सम्मान करते हैं। गौवों को गोग्रास देने के बाद उनकी प्रदक्षिणा करते हैं तथा उन्हें चरने ले जाने के लिए कुछ देर तक साथ चला जाता है। संध्या काल जब गौवें बथान पर आती हैं तब उनकी अगवानी, अभिवादन एवं पंचोपचार पूजन होता है। उनके चरणों की धूल लगाई जाती है और अभीष्ट प्राप्ति के लिए कामना की जाती है।

अक्षय नवमी

कार्तिक शुक्ला नवमी को अक्षय नवमी कहते हैं। इस दिन व्रत, पूजा, तर्पण तथा दान करने के फलस्वरूप अक्षय फल की प्राप्ति होती है। अक्षय नवमी नाम पड़ने का यही कारण है। अक्षय नवमी को आँवरा नवमी भी कहा जाता है। पुराणों के मतानुसार त्रेता युग का शुभारम्भ इसी तिथि को होता है।

अक्षय नवमी व्रत के पालन में निम्नलिखित विधान बतलाये गये हैं—प्रातः काल शय्या त्याग कर प्रभुनाम स्मरण कर शौच-स्नानादि से निवृत्त हो भगवान् लक्ष्मी नारायण पूजनोपरांत द्वादशाक्षर मंत्र का जाप करे। फिर विधिवत् तुलसी तथा विष्णु का विवाह कराये और शक्त्यनुसार दान भोजन दे। उस दिन रात में कथा सुने।

इसी तिथि को आँवरावृक्ष के नीचे पूजन विधान भी है। उस स्थान पर पूजन के बाद सत्पात्र भोजन करायें और अन्त में सपरिवार स्वयं भोजन करे।

कहा गया है कि इस व्रत के पालन से सकल पाप विनष्ट होते हैं तथा सद्गति की प्राप्ति होती है।

अक्षय नवमी की व्रत-कथा इस प्रकार है—कनकाधिप नाम का एक धनी, परोपकारी, धर्मपरायण, सहृदय, तेजस्वी तथा दृढ़ प्रतिज्ञ वैश्य विष्णुकाँची में रहता था। उसे कोई संतान न थी। बहुत दिनों बाद बहुत दान पुण्य के बाद उसके घर एक कन्या ने जन्म लिया। उसका नामकरण हुआ किशोरी। भाग्य देखने वाले ने बतलाया कि किशोरी का पति ठीक विवाहोपरान्त बिजली के मारने से मर जायगा। कनकाधिप इस भविष्यवाणी को सुन कर चिंतित और दुखी तो रहता था किन्तु वह भक्ति सेवा में विशेष कर तीर्थ यात्रियों के आतिथ्य में बड़ा मन लगाता था। उसकी सेवा प्रशंसा सुनकर एक बार भगवान् शंकर स्वयं कनकाधिप के घर अतिथि बन कर पहुँचे। भगवान् शंकर उसकी सेवा से प्रसन्न हुए और उन्होंने कनकाधिप से उसके उदास चिंतित रहने का कारण पूछा। उसने अपनी पुत्री के दुर्भाग्य की बात बतलाई। तब भगवान् शंकर ने कहा—"तुम अपनी पुत्री से तीन वर्षों तक अक्षय नवमी व्रत कराओ, उसका वैधव्य योग मिट जायगा।" कनकाधिप ने ऐसा ही किया। फलस्वरूप काँची के राजा जयसेन के पुत्र राजकुमार मुकुन्द देव किशोरी के विवाह के लिए इच्छुक हुआ। मुकुन्द देव ने किशोरी से विवाह के लिए सूर्य व्रत प्रारंभ किया। उसने एक रात स्वप्न में सुना कि भगवान् सूर्य कह रहे हैं कि किशोरी को वैधव्ययोग है, अतः उसके साथ विवाह ठीक नहीं है। इस पर मुकुन्द देव—

जो किशोरी के साथ विवाह करने के लिए अड़ा हुआ था, भगवान् सूर्य से प्रार्थना करने लगा—"भगवान् आप तो सर्वसमर्थ हैं । आप में विधि विधान को बदलने की शक्ति है।" मुकुन्द देव ने अपना व्रत जारी रखा। इधर किशोरी ने भी अपने व्रत अनुष्ठान के दौरान एक रात स्वप्न में ऐसा अनुभव किया कि उसका वैधव्य अमंगल शीघ्र ही दूर होने वाला है। कालान्तर में मुकुन्द देव और किशोरी के व्रत पूरे हुए। राजा जयसेन के मंत्री की मध्यस्थता से दोनों का विवाह होना तै हो गया। जिस दिन विवाह होने वाला था उस दिन आकाश में मेघ घिर आये। बिजली चमकने लगी और अमंगल के लक्षण प्रकट होने लगे। और विवाह समाप्त होते ही बिजली कौंधी और गिरी। सब-के-सब बेसुध हो गये। कुछ देर बाद सुधि आने पर लोगों ने देखा कि वर के साथ मालिन की पुत्री जली मरी है और वर राजकुमार मुकुन्द जीवित और स्वस्थ प्रसन्न है। इस प्रकार व्रत के प्रभाव से सकल कार्य सुचारुरूपेण सम्पन्न हुए।

देवोत्थान

कार्तिक शुक्ला एकादशी को देवोत्थान का विधान है। स्थान-स्थान पर यह एकादशी प्रबोधिनी, देवोत्थायिनी, देवोत्थानी, देवठन, डिठवन, दठवन तथा डेठावन एकादशी के नाम से जानी जाती है। इस एकादशी की महिमा क्षीरशायी विष्णु के चातुर्मास सोते से जागने की है। उपर्युक्त सभी नाम इसी कारण दिये गये हैं। इस पावन तिथि का महत्त्व नगरों में कम, किन्तु गाँवों में अधिक है। प्रायः सनातन धर्मावलम्बी इस तिथि के दिन व्रत रखते हैं। इस व्रत के अवसर पर ईख की पूजा की विशेषता रहती है। उस दिन ईख को निमन्त्रण देकर काट कर घर लाया जाता है। पूजा के लिए वेदी (अल्पना) सजाई जाती है, ईख को खड़ा किया जाता है और विधिवत् पूजा की जाती है। प्रसाद स्वरूप ईख को चूसा जाता है और नया गुड़ बनाया जाता है। ईख की पूजा के साथ सुथनी भी पूजी जाती है।

देवोत्थान को प्रातःकाल शौच-स्नानादि से निवृत्त हो अखंड व्रत पालन का विधान है। यदि निराहार रहने में कोई कष्ट हो तो लाचारी में फलाहार किया जा सकता है। रात में पूजा-पाठ के बाद विष्णुस्तोत्र के पाठ के बाद भगवान् की कथा का आयोजन किया जाता है। फिर शंख, घंटा और घड़ियाल का सामू-

ह्कि वादन करते हुए भगवान् को निम्न शब्दों मे जागने-उठने के लिए कहा जाता है :—हे गोविन्द ! उठिये नींद त्याग कीजिए। आपके जागने के साथ सारी दुनियाँ जागती है। हे भगवान् उठिये-उठिये। वाराह अवतार लेकर सारे विश्व में विचरण कीजिए। हिरण्याक्ष को मारकर त्रैलोक्य का मंगल कीजिए। इसके बाद भगवान् के चल मंदिर अथवा सिंहासन को बड़े मनोहर तरीके से बडी सजावट के साथ शोभा यात्रा में घुमाकर स्थापित किया जाता है। भगवान् की यात्रा मे भाग लेने वाले विशेष पुण्य फल के अधिकारी बनते है। फिर रात में सागोपांग कथा-पुराण का विधान है। सारी रात इसी कार्य-कलाप में बीतती है। दूसरे दिन प्रातःकाल पारण किया जाता है, दान दिया जाता है तथा सज्जनों को भोजन कराया जाता है।

देवोत्थान एकादशी का पर्व वैष्णवो तथा स्मार्तो तथा सभी लोगो का अत्यन्त लोकप्रिय पर्व है। कई स्थानो मे इसको सर्वाधिक पुण्यदायी कल्पांतकारी माना जाता है। इसी दिन तुलसी के जो विष्णुप्रिया भी कही जाती है, विवाह का भी आयोजन होता है। इस शयन तिथि स इस जागरण तिथि तक का समय सभी प्रकार के मंगल कार्यो के लिए खुल जाता है। भगवान् के जागते ही इस महान् विश्व के सभी कार्यो में मुस्तैदी से हाथ लगता है। स्त्रियाँ तो विशेष कर इस अवसर पर मागलिक कार्यो में लगती है। सब उल्लसित स्त्रियाँ नाना प्रकार के गीत गाती हैं।

श्री भगवान् विष्णु के शयन-जागरण की कथा के संबंध मे जो कथा कही सुनी जाती है निम्न प्रकार है—भगवान् ने कुख्यात आततायी शंखसुर का वध भाद्र मास की शुक्ला एकादशी को किया था। युद्ध में वे इतना थक गये कि उन्होने क्षीर सागर में जाकर दीर्घकाल तक शयन की इच्छा सूचित की। वे उस दिन से लेकर कार्तिक शुक्ला एकादशी तक सोते रहे। इधर दुष्टदानवों के अन्याय अत्याचार बढते रहे। फलतः उन्हे जगाया गया एव उस अवसर पर जो पूजा की गई वही देवोत्थान एकादशी है।

भीष्म पंचक

कार्तिक शुक्ला एकादशी से कार्तिक पूर्णिमा तक की पाँच तिथियों को भीष्म पंचक कहा जाता है। इन तिथियों में स्नानादि व्रत का महत्त्व है। कहा जाता है कि जो लोग मास भर का स्नान व्रत करने में असमर्थ होते है, वे इन पांच दिनों के व्रत से सम्पूर्ण लाभ के अधिकारी होते है।

कार्तिक मास की शुक्ला एकादशी को शुद्ध पवित्र हो चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिए इस व्रत का संकल्प किया जाता है। बाद में सर्वतोभद्र की वेदी पर कलश स्थापना कर वासुदेव का द्वादश मन्त्र द्वारा पूजन किया जाता है। प्रतिदिन १०८ बार मन्त्र का जप किया जाता है। मन्त्र के साथ तिल तथा जौ की आहुति दी जाती है। यह क्रम पांच दिनों तक चलता है। क्रम में थोड़ा सा अन्तर यह किया जाता है कि एकादशी तिथि पर कमल से भगवान् के हृदय की, द्वादशी तिथि पर बिल्व पत्र से कटि प्रदेश की, त्रयोदशी तिथि पर केवड़े के फूल से घुटनों की, चतुर्दशी तिथि पर चमेली पुष्प से चरणों की तथा पूर्णिमा के दिन तुलसी की मंजरी से सम्पूर्ण अंगों की पूजा की जाती है। इस काल में एकादशी तथा द्वादशी को निराहार, त्रयोदशी को शाकाहार एवं चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को निराहार रहा जाता है। फिर प्रतिपदा को सत्पात्र को भोजन दानकर भोजन करने का विधान है। व्रत के पांच दिनों में आत्म शुद्धि के लिए पंचगव्य खाने का विधान है। और उपर्युक्त पांचों दिनों में भीष्म के तर्पण का भी विधान है।

एतद्विषयक कथा इस प्रकार है—महाभारत युद्ध समाप्ति पर जब भीष्म शरशय्या पर पड़े थे, भगवान् श्रीकृष्ण पांचों पाडवों के साथ राजनीति की कुछ विशेष बातें उनसे सीखने पहुंचे। भीष्म पितामह पांच दिनों तक धर्म-कर्म के विविध अंगों पर अति उत्तम शिक्षा देते रहे। इस पर भगवान् श्रीकृष्ण भीष्म पितामह की ज्ञान भरी वाणी से आह्लादित होकर बोले—"वीर श्रेष्ठ भीष्म ! मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूं और आपकी शिक्षा से भरे इन पांच दिनों को 'भीष्म पंचक' की संज्ञा देता हूं। मैं यह भी आशीर्वाद देता हूं कि इन पांच दिनों का व्रती सांसारिक सुख-समृद्धि का उपभोग कर परम गति प्राप्त करेगा।

कार्तिक पूर्णिमा

तिथियों में पूर्णिमा और पूर्णिमाओं में कार्तिक पूर्णिमा बड़ी पवित्र मानी जाती है। कार्तिक पूर्णिमा को होने वाले व्रत त्योहार का बड़ा माहात्म्य है।

हालांकि इस व्रत के पालन में पंच तत्त्वों का सम्मान होता है, किंतु इनमें अग्नि-तत्त्व की प्रतिष्ठा सर्वाधिक होती है। इस तिथि पर सूर्यास्त के बाद घर-दरवाजों को प्रकाशित ज्योतित करने का विधान है।

अग्नि-तत्त्व की इस मुख्यता की महती पवित्रा पौराणिक कथा है। भगवान्

शिव त्रिदेवों में हैं। उन्होंने युगल भगवान ब्रह्म और विष्णु को स्थान और सीमा की अनंतता के ज्ञान के लिए इसी अवसर पर प्रकाश स्तम्भ का रूप धारण किया था।

उक्त प्रकाश स्तम्भ का पता लगाने के लिए ब्रह्मा ने हंस रूप धारण कर आकाश की यात्रा की और विष्णु ने सूकर रूप मे पाताल प्रवेश किया। मंदिरों के प्रांगण मे ध्वज स्तम्भ इसी अनंत प्रकाश का प्रतीक है—द्योतक है। हमारे ऋषि-मुनियों के विचार में यह प्रकाश स्तम्भ अनंत, अनादि और सर्वव्यापी है।

इस अवसर पर मंदिरों के समक्ष सूखी झाड-पत्ती को जमाकर जलाने में भी कोई पौराणिक विशेषता है। कहा जाता है कि पुराकाल में जब किसी राक्षस विशेष के अत्याचार से देवताओं में हाहाकार मचा तब भगवान् शंकर ने उक्त असुर को रथसहित भस्म कर दिया। ऐसा समझा जाता है कि इस अग्निदाह का कारण शिव का तृतीय नेत्र था।

कार्तिक व्रत सम्बन्धी अनेक पौराणिक गाथायें-कथायें है। कहा जाता है कि इसी व्रत का पालन कर राजा बलि ने जिसे अपना शरीर जलता-जलता मालूम पड़ता था, रोग मुक्त हो, पूर्ण शांति पाई थी। इस विषय की दूसरी कथा का संबंध स्वयं शिवप्रिया पार्वती से है। पार्वती ने भूल से कभी कोई पाप किया। जब वह पाप सन्ताप से जलने लगी, तब उन्होंने कार्तिक व्रत का पालन किया और वह पाप मुक्त बनने मे सफल हुई। शिव के इसी प्रकाश स्तम्भ के प्रसाद से दुर्गारूपिणी पार्वती महिषासुरमर्दिनी बन सकी थीं।

इस अवसर पर भुने हुए चावल का भोग लगाया जाता है। भगवान् शिव को यह भोग बडा पसन्द है। यही भोग पहली बार राजा बलि ने भगवान् विष्णु को अर्पित किया था और इसके फलस्वरूप उसे नारकीय यातना से मुक्ति मिली थी।

कार्तिक मास व्रत और त्योहार का मास है। इस मास का स्नान लोक परलोक बनाने वाला होता है। इसी मास मे नर-नारी सरिता तट वास एवं नियमित प्रातः स्नान कर दैविक, दैहिक तथा भौतिक ताप पाप से विमुक्ति पाते है। इस अवसर पर जिस प्रकार प्रातः स्नान का पुण्य है, उसी प्रकार सान्ध्यदीप दान का माहात्म्य है। लोग मास भर घरों मे-मन्दिरों में आकाश दीप जलाते है। जल में डुबकी-मारकर गहराई की अनंतता और आकाश-दीप जलाकर ऊँचाई का अनादित्व ढूँढते है। इस मास मंदिरों मे भीड बढती है, और सागर-सर-सरिता-तट पर जमघट होता है। स्वच्छता-सफाई-पवित्रता सुरूपता पर जोर दिया जाता है। शरीर और मन मे—हृदय और मस्तिष्क मे पुनीतता और

प्रमंजुलता आती है। और भगवान् शिव के ज्योतिस्तम्भ की तरह ज्ञान, विद्या और बुद्धि का प्रकाश फैलता है।

भारत और बृहत्तर भारत का ऐसा कोई हिस्सा नहीं जहाँ इसे महत्त्व न मिला है। कहा जाता है कि इस तिथि पर पुराण-प्रसिद्ध गज-ग्राह का जीवन-मरण युद्ध गंगा-गण्डकी-संगम पर हाजीपुर-सोनपुर में हुआ था। इसी दिन भगवान् विष्णु ने साक्षात् मेदिनी तल पर उतर कर गज का उद्धार किया था। गज-ग्राह का युद्ध न्याय और अन्याय का, सदाचार और अत्याचार का समझा जाना चाहिये। भगवान् सदा ही न्याय के लिए, सदाचार के लिए, साधुओं के त्राण के लिए, दुष्टों के विनाश के लिए तथा धर्म संस्थापना के लिए युग-युग से अवतार लेते आ रहे हैं। कार्तिक पूर्णिमा इसी बात की याद दिलाती है।

नवान्न

मुकराती के दसवें छठ,
तेकरा पाचे देठावन
ओकरा नवे नेमान—

यह कहबी घाघ की है। (मार्ग) अगहन मास बड़ा पवित्र, महत्त्वपूर्ण और पुण्य मास है। विष्णु के अवतार भगवान् कृष्ण ने महाभारत के समय कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अपने अत्यन्त प्यारे पाडुपुत्र अर्जुन को अपना परिचय देते हुए कहा था—"मासाना मार्गशीर्षो अहं।" इस अगहन (मास) का गौरव महत्त्व और भी तब बढ़ जाता है, जब हम जानते है और मानते है कि भारतीय कृषि जगत् के सबसे बड़ा शुभ दिन अगहन मास का वह दिन है, जो इसी मास की किसी मंगल तिथि को नवान्न पर्व त्योहार के रूप में मनाया जाता है।

घाघ ने अन्यत्र कहा है—"हथिया बरसे, चित मडराया, घर बैठी गिरस्थ निराम। हथिया नक्षत्र में अन्तिम में अन्तिम वर्षा का होना किसानों की खेती के लिए अमृत वर्षा है। कहा गया है कि अदरा में आदि में तथा हथिया में अन्त में पानी होना चाहिए यदि ऐसा न हुआ तो खेती खतम अकाल शुरू। घाघ कहता है—

आवत आदर न दयो
जात दिया ना हस्त
ये दोनों ऐसे गये।
पाहुन और गिरहस्त

हाँ, तो हथिया बरस आता है और चितरा मडराने लगता है तो किसानो के चित्त आह्लादित होने लगते और उनमे मस्ती छा जाती हैं। कारण सबके सब समझते है कि अब खेतों का अच्छा होना निश्चित है यही नहीं, इस अगहनी फसल के साथ-साथ आगे की रबी (जौ, गेहू, दलहन, तेलहन) फसल के होने और अच्छे होने की गारंटी मिल गयी।

हथिया का पानी धान को प्राण और जान देता है। यह फसल के लिए अमृत के समान है। इस पानी के बाद किसान मडली में अपूर्व उत्साह छा जाता है। वे सबके सब अन्न देवता के आगत-स्वागत मे लग पावडे बिछा देते हैं। खेतो के मेड पर चलते किसान नाचते-गाते-इतराते-फिरते है। ऐसा इसलिए कि उनके सामने धनधान वैभव का असीम सागर-ससार उमड आता है। देव-देवियो की पूजा होती है। दीपावली मनायी जाती है। भाई बहन मिलन होता है। भगवान् चित्रगुप्त का खाता खुलता है। न्याय की अन्याय पर विजय होती है। असुरो का नाश होता है। रामराज्य धरती पर उतरता है एव अन्न-कूट तैयार होता है। और कार्तिक शुक्ला एकादशी को सोये भगवान् विष्णु जागते है तथा किसान उनकी अर्चना पूजा करते हुए लक्ष्मी का आह्वान करते है—

देवी भगवती आओ
हमारे खेतो में
हमारे घर पधारो
अन्न भगवान
धान देवता
आओ : धानेधान,
कोठी धान बढारे धान
गांधी पतिया उडी
और

इस धरती को कृषि प्रधान भारत भूमि को धन-जनवैभव से परिपूर्ण करें। प्रकृति के इस माहोल मे आनन्द के मदभरे अवसर पर खंजन चिरैया उछलती-कूदती आती है और कहती है—लो यह शरद काल आया। वर्षा ऋतु समाप्त हुई। खेतों के हरी-पीली काली त्रिवेणी सुषमा मार्दी चादर बिछ गयी। किसानों

नाचो गाओ पूजा करो पर्व मनाओ, स्वागत करो समारोह करो और लोग नवान्न की तैयारी में लग जाते हैं।

नवान्न मासों में मास मार्ग (अगहन) में होता है—मनाया जाता है। पत्रा पठित पंचांग-ज्योतिषी नवान्न पर्व के लिए दो दिन अगला पिछला पहला दूसरा घोषित करते हैं। किसान परिवार सहित नवान्न की तैयारी में लग जाते हैं। उस दिन के लिए नया सजा ताजा दही, नया गुड़, केले का नया पत्ता एवं लाल श्वेत मूली जुटाई जाती है। नवान्न के दिन प्रातः खेत और पौधे (धान) की पूजा होती है, फूल चढ़ाया जाता है, दूध ढारा जाता है। बाद में उसी समय उस कचिया से जो नवरात्रि के अवसर पर नयी या पुरानी नयी बनायी गयी है, पके अधपके धान के पौधे आदर पूर्वक प्रणाम कर काट कर पुल्ला बना कर उस आँगन में लाये जाते हैं, जो अखरा गोबर से लीपा जाता है ? पौधों से धान के दाने पवित्रता-नम्रता-प्रेम से अलग किये जाते हैं ? उन दानों को आग पर खपड़ी में उलाकर पान की हरी ताजा पत्तियाँ मिलाकर चूड़ा तैयार किया जाता है। आँगन में ठीक बीचोबीच वेदी रखी जाती है (वेदी नवरात्रि में तैयार होती है) पचामृत तैयार होता है, पाँच प्रकार की लकड़ी जुटायी जाती है, जिससे अग्नि देवता प्रज्वलित होते हैं। इधर शंख घड़ी-घंट की ध्वनि होती है। पंच देवताओं की पूजा संस्कृत-हिन्दी-और मैथिली में शुरू होती है। पूजा-पाठ के अन्त में हवन होता है। अग्नि में पंचामृत डाला जाता है—काष्ठ तृण खड डाले जाते हैं। पान पुंगीफल (खंड) दिये जाते हैं। परिवार के सभी लोग स्नान मंजन कर नये पुराने धुले वस्त्र परिधान कर अग्नि में पचामृत डालते हैं, ब्रह्म (अन्न) को दिशाओं को और देवताओं को प्रणाम करते हैं, आचमन करते हैं और प्रसाद पाते हैं।

नवान्न के दिन चूड़ा नया (ताजा) दही, नया गुड़, नयी मूली नये कदली कमल के पात पर भोजन करने का विधान है। पहले ब्राह्मणों परिजनों एवं गुरुजनों को भोजन कराया जाता है। तथा बाद में घर के सभी लोग पंक्तिबद्ध हो भोजन पर बैठते हैं। भोजन शुरू करने के पहले आस-पास के पशु-पक्षियों को भोजन दिया जाता है अथवा उनका हिस्सा निकाल दिया जाता है। भोजनोपरांत पान खाते हैं, एक दूसरे से मिलते हैं—प्रणाम, नमस्कार करते हैं और आशीर्वाद देते हैं।

नवान्न के रात्रि भोजन के लिए खिचड़ी या खीर बनती है। वह खिचड़ी या खीर नये चूड़े की होती है। खिचड़ी या खीर के साथ पाँच तरह की नयी सब्जी चाहिए। पाँच सब्जियों में ओल, कच्चू, ममरआ अवश्य हैं। खीर में

केशर कस्तूरी गुलाब अनिवार्य हैं । खीर हो खिचड़ी सब मिलकर अपनो-परायों के साथ खाते हैं ।

नवान्न भारत के पूर्वाञ्चल का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण त्योहार है । नव वर्षारंभ का यह पर्व त्योहार जो एकबारगी ही सांस्कृतिक आर्थिक वैज्ञानिक एवं कृषिक है । इसका वही महत्त्व है जो विहूका आसाम में, ओणम का केरल में तथा पोंगल का तमिलनाडु में है ।

काल भैरव अष्टमी

अग्रहायण मास की कृष्णा अष्टमी को काल भैरव अष्टमी की संज्ञा दी गई है । भैरव भगवान् इन्द्र के गण हैं । ये प्रकृत्या अत्यन्त उग्र तथा क्रोधी हैं । ये त्रिशूल तथा दण्ड सुसज्जित युद्धप्रिय तथा रक्तप्रिय बने सदा सर्वथा समग्र देवताओं के सुरक्षा-प्रभारी हैं । विघ्न विनाश के लिए, रोग की शान्ति के लिए तथा सिद्धि-समृद्धि के लिए भैरव-व्रत को अति विशेष महत्त्व दिया गया है ।

भैरव व्रत के विधान में बतलाया गया है कि भैरवाष्टमी की तिथि पर नित्यकर्मादि तथा स्नानादि से शुद्ध पवित्र हो भैरव मन्दिर में जाकर उनकी तथा उनके वाहन की पूजा कीजिए । भजन कीर्तन में दत्तचित्त हो रात्रि-जागरण कीजिए तथा भगवान् शंकर की कथा का श्रवण कीजिए ।

भैरव अष्टमी की कथा यों कही जाती है—एक बार ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र में परस्पर यह स्पर्द्धा हुई कि इन चारों में कौन सबसे बड़ा है । चारों-के-चारों अपने को एक दूसरे से बढ़ कर बताने लगे । यही नहीं एक दूसरे की निन्दा करने लगे । शिव जी ब्रह्मा की बात से इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने काल भैरव को पैदा कर उसे आज्ञा दी कि वह ब्रह्मा का एक मुख काट डाले । भैरव ने तत्काल आज्ञा का पालन किया । बेचारे ब्रह्मा पंचमुख से चतुर्मुख हो गये । यह देखकर सभी देवता अत्यन्त डरने लगे । भैरव मात्र शंकर भगवान् के आज्ञाकारी हैं ।

दत्तात्रेय जयन्ती

महाभारत पुराण के भीष्म पर्व के भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने परम प्यारे पाडु-पुत्र अर्जुन को अपनी महत्ता श्रेष्ठता-दिव्यता-पूज्यता का बखान करते हुए कहा—पार्थ ! मैं मासो मे अगहन हूँ— 'मासाना मार्गशीर्षोऽहं ।' इस कथन से अगहन मास का श्रेष्ठत्व सर्वविदित है । इस अगहन मास की पूर्णिमा तिथि की महत्ता का क्या कहना । इसी पवित्र पूर्णिमा तिथि को भगवान् दत्तात्रेय की जयन्ती मनाई जाती है ।

भगवान् दत्तात्रेय सकल ज्ञान विज्ञान मे पारंगत एक अपूर्व-अनुपम देवता हैं । वे भगवान् विष्णु के अवतार है । वे त्रिमूर्ति (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) भगवान् है । उन्होंने एक नहीं चौबीस गुरुओं से शिक्षा ग्रहण कर अपने ज्ञान-विज्ञान को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था ।

अगहन की पूर्णिमा पर, जिस तिथि को भगवान् दत्तात्रेय का प्रादुर्भाव माना जाता है उनकी जयती मनाई जाती है तथा व्रत रखने एवं उनके पूजा-अनुष्ठान का बडा महत्त्व है । इस व्रत अनुष्ठान पूजा से सकल अभीष्ट सिद्ध होते हैं । यों तो यह व्रत अनुष्ठान अपने आप में सम्पूर्ण सिद्धि है, फिर भी सती साध्वी पति-परायणा नारियों के मामले में इसकी विशेषता चरम सीमा छूती-चूमती है ।

दत्तात्रेय भगवान् के अनुष्ठान व्रत विषयक कितनी ही लौकिक एवं पौराणिक कथाएँ कही-सुनी जाती रही है । ये कथायें चिरकालीन एवं अनन्तकालीन हैं । दत्तात्रेय के पिता थे महर्षि अत्रि तथा उनकी माता थी महासती अनुसूया । भगवती अनुसूया की पतिभक्ति की गाथा युगान्तरों-कल्पांतरों-मन्वतरो से महाकाल के विशाल वक्ष पर स्वर्णाक्षरों-लौहाक्षरो में अंकित हैं ।

एक समय की बात है—एक पतिव्रता अपने कुष्ठ पति को कंधे पर बिठा अपने रास्ते जा रही थी । कुछ दूर जाने पर उसके पति का पैर ऋषि मांडव से छू गया । ऋषि क्रोधावेश मे शाप दे बैठे—"पति की मृत्यु सूर्योदय होते ही हो जायगी ।" शाप सुनकर पतिव्रता सकपकाई और फिर बोली—'सूर्योदय नही होगा ।" फिर क्या था, दिन बीता रात आई । सूर्योदय का पता नहीं । महीनों पर महीने बीत चले, रात का अन्त नही । सर्वत्र हाहाकार मच गया । सबके सब शोक संतप्त-रोगग्रस्त । कोई उपाय नही । सबने भगवान् को पुकार की । आकाशवाणी हुई—"कोई पतिव्रता ही संकट दूर कर सकती है ।" तब सब मिलकर देवी अनुसूया के पास पहुँचे, उनसे प्रार्थना की । भगवती अनुसूया उन

सबके कष्ट से द्रवित हो पतिव्रता पत्नी के पास पहुँची बोली—"देवि ! पतिव्रते ! सूर्योदय होने दो। तुम्हारे पति मर जायेंगे। मैं उन्हें जीवित कर दूँगी।" पतिव्रता ने वैसा ही किया। सूर्योदय हुआ, उसके पति मर गये और महासती अनुसूया ने उसके पति को पुनर्जीवित कर दिया।

पतिव्रता की इस शक्ति एवं देवी अनुसूया के तेज-प्रताप की गाथास्वर्गलोक तक पहुँच गई। ब्रह्मा-विष्णु-महेश ने एक साथ देवी अनुसूया को वर याचना के लिए कहा। तत्पश्चात् देवी ने वर माँगा—मुझे आप तीनों पुत्र रूप में प्राप्त हों। और तीनों एक साथ बोल उठे—"तथास्तु।"

उपर्युक्त सती कथा यहीं समाप्त नहीं हो जाती है। कहा जाता है कि एक बार भगवान् नारद ब्रह्मपत्नी सावित्री, विष्णु पत्नी लक्ष्मी एवं महेशपत्नी पार्वती के समक्ष उपस्थित हो महासती भगवती अनुसूया के देदीप्यमान पवित्र चरित्र की महती प्रशंसा उदात्त शब्दों में करते हुए उसकी सर्वश्रेष्ठता का यशोगान करने लगे। भगवानों की ये पत्नियाँ नारी-ईर्ष्या के फलस्वरूप प्रसन्न और आह्लादित होने की जगह देवी अनुसूया को निकृष्ट और नीचतम दिखाने के लिए कटिबद्ध हो गईं। उन्होंने अनुसूया के गर्व को खर्व करने के लिए षड्यन्त्र किया—घृणित योजना बनाई। इन्होंने अपने पतियों को सिखा पढ़ा कर देवी की परीक्षा लेने के लिए मजबूर किया। बेचारे त्रिदेव पत्नी प्रताड़ित हो सौम्य ब्राह्मण वेश में देवी अनुसूया के पास पहुँचे और भिक्षा में भोजन माँगने लगे। देवी ने बड़े प्रेम से भोजन तैयार किया। और जब त्रिमूर्ति आसन पर बैठे तब उन्होंने एक अनुचित प्रस्ताव—अनुसूया नग्न होकर भोजन परोसे—उपस्थित किया। अनुसूया के बहुत अनुनय-विनय तथा समझाने-बुझाने के बाद भी जब ब्रह्मा विष्णु-महेश अपने ओछे विचार पर डटे रहे तब अनुसूया ने अपने पति का ध्यान किया और उसे सारी माया समझने में देर नहीं लगी। अनुसूया 'हाँ' कह कर भीतर गई। अपने पतिदेव का चरणोदक लिया और लौट कर तीनों पर छिड़क दिया। फलस्वरूप उन तीनों की कलुष भावना विनष्ट हो गई और बच्चों के समान अनुसूया से लिपट गये। सती उन्हें पुत्रवत् चूमने चाटने लगी एवं अपना दूध जो वक्ष में आया था पिलाने लगी। दुग्ध पान कर तीनों के तीनों मातृ सुख का अनुभव करते हुए सो गये। उन्हें बाद में पालने में लिटा दिया गया। वे वहीं रहने लगे।

इस घटना के कई दिन बीत गये। देवताओं को खोजा जाने लगा। तीनों देवियाँ—सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती पतियों को न पाकर घबड़ा उठीं। वे नारद जी से मिलीं। भगवान् नारद ने उन्हें बतलाया कि कई दिन पूर्व उन्होंने उन तीनों को अत्रि आश्रम की ओर जाते देखा था। तीनों देवियाँ और भी चिंतित

हो उठी। उन्हें विश्वास हो रहा था कि हो न हो अनुसूया ने उन्हें अपने यहाँ अपने जाल में फँसा लिया। लाचार होकर वे अत्रि-आश्रम पहुँची और अनुसूया से अपने पतिदेवों की कुशल पूछी। अनुसूया ने पालने की ओर संकेत किया। उन्होंने देखा तीन बालक एक समान थे। अब तो देवियों को काटो तो खून नहीं। तीनों की तीनों बडी लज्जित हुई, उनका गर्व खर्व हो गया और वे भगवती अनुसूया से अपने पतियों को पूर्वरूप मे ला देने के लिए अनुनय-विनय करने लगी। देवी अनुसूया ने उन्हें और शर्मिन्दा न कर कहा—"इन देवों ने मेरा दुग्धपान किया है। इन तीनों को मेरे पुत्र बनने पड़ेंगे। बाद में अनुसूया ने अपने पति का चरणोदक उन पर छिडक कर उन्हें अपने पूर्व रूप में कर दिया। सबके प्रसन्न हो गये। कहा जाता है कि अपने वचन की रक्षा के लिए भगवान् ब्रह्मा ने सोम रूप में, भगवान् विष्णु ने दत्तात्रेय के रूप में जन्म ग्रहण किया था।

सुरूपा द्वादशी

पौष मास की कृष्णा द्वादशी को सुरूपा द्वादशी व्रत का विधान है। यह व्रत सौन्दर्य सुख सौभाग्य सन्तान चाहने वाली स्त्रियां बड़े संयम नियम तथा हर्ष-उल्लास से करती हैं।

सुरूपा द्वादशी व्रतारम्भ एक दिन पहले से हो जाता है, जब कि पिछली रात स्त्रियाँ आचार-विचार सहित भगवान् विष्णु की कथा सुनती हैं। द्वादशी के दिन प्रातःकाल गाय का गोबर धरती पर गिरने के पूर्व ही लेकर सुखा लिया जाता है। दिन भर व्रत रखने के बाद सायंकाल मे भगवान् विष्णु की मूर्ति तिल भरे पात्र मे रखी जाती है और उसकी विधि पूर्वक पूजा अर्चना की जाती है। पूजा अर्चना के बाद सुखाये हुए गोबर की अग्नि में १०८ बार हवन किया जाता है। हवन के बाद ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है और उनको दान-दक्षिणा देने के बाद व्रतधारिणी भोजन करती है।

सुरूपा द्वादशी व्रत-कथा इस प्रकार है—एक बार भगवती पार्वती ने भगवान शंकर से पूछा—भगवन्! क्या कोई ऐसा व्रत है जिसके पालन करने से कुरूपता दूर हो सके। क्योंकि कुरूपता वह अभिशाप है जिसके चलते सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी स्त्रियों की बड़ी दुर्गति होती है। देवी पार्वती का अनुरोध सुनकर एवं उनकी व्याकुलता का अनुभव कर भगवान् शंकर ने सुरूपा द्वादशी व्रत के माहात्म्य कहते हुए इस व्रत को रखने के लिए बतलाया।

इस व्रत के सम्बन्ध में एक दूसरी कथा इस प्रकार है :—भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी संसार भर में अपरूप सुन्दरी महत्तम गुणवती थी। किन्तु उसमें एक बड़ा दुर्गुण यह था कि वह अपने रूप-यौवन के उन्माद मे दूसरे को कुछ लगाती ही नहीं थी। यहाँ तक उसने अपने इस दुर्व्यवहार के कारण अपनी सास श्रीकृष्ण की माता को कुपित कर दिया। फलतः माता ने बिगड़ कर श्रीकृष्ण का दूसरा विवाह एक अत्यन्त कुरूपा कन्या से कराने का निश्चय किया। बेचारे श्रीकृष्ण पत्नीभक्त होने के कारण बड़ी चिंता—दुविधा में पड़ गये। ठीक इसी समय देवर्षि नारद श्रीकृष्ण के सामने उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण ने अपनी मनोव्यथा कथा कह सुनाई। देवर्षि नारद बुद्धिमान गुणवान् थे ही। उन्होंने कहा—भगवन्! आप इसकी कोई चिन्ता न करें स्वयं लक्ष्मी अत्यन्त कुरूपा बन कर इस धराधाम पर विराजमान हैं। ऐसा होने का कारण ऋषि दुर्वासा का शाप है। बात यह हुई कि एक बार लक्ष्मी को अपने रूप सौन्दर्य का इतना मद हुआ कि वे दुर्वासा की कुरूपता का मजाक उड़ाने लगीं। क्रोधी ऋषि ने यह शाप दिया कि लक्ष्मी कुरूपा होकर पृथ्वी पर जन्म लेगी। उन्हीं लक्ष्मी ने सत्यभामा रूप में धरती पर जन्म ग्रहण किया है। आप उन्हीं से विवाह कर मातृ-आज्ञा का पालन कीजिए।

देवर्षि नारद की प्रेरणा और मन्त्रणा से जब श्रीकृष्ण सत्यभामा का पाणिग्रहण कर उन्हें अपने घर ले आये तो सबको सत्यभामा की कुरूपता पर बड़ी चिन्ता हुई। तब श्रीकृष्ण की माता ने रुक्मिणी को कहा कि वह अपने सुरूपा द्वादशी व्रत के अनुष्ठान के पुण्य के अंश सत्यभामा को दे दे ताकि वह भी सुन्दरी हो जाय। किन्तु रुक्मिणी इसके लिए तैयार न हुई। अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह अपने मुँह दिखावा के रूप में रुक्मिणी से सुरूपा द्वादशी के व्रत के पुण्य का किंचित् अंश माँगे। सत्यभामा ने वैसा ही किया और रुक्मिणी को ऐसा करना पड़ा। व्रत के पुण्यांश के प्रभाव से सत्यभामा भी अभूतपूर्व सुन्दरी बन गई।

ईशान व्रत

पौष मास की शुक्ला चतुर्दशी को ईशान व्रत का विधान है। यह काम्य व्रत सर्वसुख-समृद्धि-सौभाग्य प्राप्ति के उद्देश्य से सम्पन्न किया जाता है।

शुक्ला चतुर्दशी को प्रातः शौचादि से निवृत्त हो स्नानादि के [illegible] के पाठ पूजन करते हुए दिन-रात का व्रत विधान है। फिर [illegible]

पूर्णिमा को सुन्दर श्वेत वस्त्राच्छादित वेदी पर पूर्व दिशा में विष्णु, दक्षिण में सूर्य, पश्चिम मे ब्रह्मा, उत्तर मे रुद्र तथा मध्यभाग मे ईशान की स्थापना कर उनकी विधिवत् पूजन-आरती के बाद योग्य ब्राह्मणों को गोयुगल (एक गाय और एक बैल) का दान दिया जाता है और उन्हें भोजन कराया जाता है। बाद मे व्रती गोमूत्र पान करता है तथा उपवास करता है।

यह व्रत लगातार पाच वर्षों तक करने का विधान है। व्रत समाप्ति पर मनोकामना पूरी होती है और सुख साधन, ऐश्वर्य तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

संकठा चौथ

माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी संकष्ट हर अथवा सकठा चौथ कहलाती है। यह तिथि गणेश जी की जन्म तिथि है। इस तिथि पर गणेश-व्रत का विधान है। गणेश व्रतधारी सभी कष्टों से मुक्त हो सुख-समृद्धि पाता है।

माघ मास की गणेश चतुर्थी के प्रातःकाल गणेश व्रत रखने वाला स्नानादि मे निवृत्त हो कलश की स्थापना कर गणेश जी की प्रतिमा स्थापित करता है। वह गणेश जी को सिन्दूर चढाता है, स्तोत्र पाठ करता है, लड्डू भोग लगाता है, तिल-गुड का कूट बना उसे अर्पित करता है तथा गणेश-पूजा के साथ-साथ चन्द्रमा और रोहिणी की विधिवत् पूजा करता है।

गणेश व्रत से सम्बन्ध रखने वाली कथा इस प्रकार कही जाती है—पुराकाल में मानव नामधारी एक धर्मात्मा तथा न्यायपरायण राजा था। उसकी रानी रत्नावली बड़ी सुन्दरी और गुणसम्पन्ना थी। दोनों का जीवन बड़ा सुखमय था। दैव दुर्विपाक से राजा के शत्रुओं ने उसके राज्य पर आक्रमण किया और उसे रानी सहित जगल मे भाग जाना पड़ा। जंगल मे राजा की मुलाकात एक तेजस्वी ऋषि से हुई। ये तेजस्वी और कोई नही महामुनि मार्कण्डेय थे। राजा ने मार्कण्डेय जी से अपनी सारी व्यथा-कथा निवेदित की। मुनि जी ने थोड़ा ध्यान कर बताया कि यह उनके (राजा-रानी) पूर्व पापों का फल है। राजा पूर्व जन्म मे एक व्याध था। उसने उस जन्म में एक बार गणेश व्रत रखा था, किन्तु बाद में व्रत रखना छोड़ दिया था। उस व्रत के पुण्य का फल जब खतम हो गया तो राजा के व्याध रूप मे किये गये पाप जागे और वे ही पाप उसे भोगना पड़ रहा

है। राजा ने मार्कण्डेय जी के उपदेशानुसार गणेश व्रत रखना शुरू किया। व्रत के प्रभाव से उसने अपने शत्रुओं पर विजय पाई। वह पुनः राजसिंहासन पर बैठा और आजन्म रानी सहित गणेश व्रत का अनुष्ठान करता हुआ सफल काम हुआ।

मौनी अमावस्या

माघ मास की अमावस्या मौनी अमावस्या की संज्ञा से प्रसिद्ध है। इस तिथि पर मौन रहकर ऋषि मुनियों के आचरणानुसार स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। मौनी अमावस्या के दिन तीर्थराज प्रयाग में स्नान का विशेष महत्त्व समझा जाता है। उस दिन स्नान के सिवा सब प्रकार के दान की बड़ी महिमा है। मौनी अमावस्या के विशेष अवसर पर तीर्थराज प्रयाग में मुण्डन कराने वाला विशेष पुण्य का अधिकारी होता है। हालांकि मौनी अमावस्या का यह पर्व अमावस्या को पड़ता है किन्तु प्रयागराज में आकर कल्पवास उसके पहले से ही शुरू हो जाता है। इस कल्पवास में धर्मानुष्ठान होता है। शास्त्रीय सदाचरण का सत्यनिष्ठा से पालन होता है, एकाहार किंवा फलाहार पर बिताये जाते है, सदाचारी सत्पात्रों को दान भोजन दिये जाते है, धर्मोपदेश सुना जाता है, सत्संग होता है और कहीं-न-कहीं कोई सत्कथा होती रहती है। मौनी अमावस्या के दिनों में ही त्रिवेणी संगम पर प्रसिद्ध धार्मिक मेला कुंभ के अवसर पर लगता है। मेले में संगम कछार पर प्रयाग स्थित शिविरों में तथा अन्य खाली स्थानों पर धार्मिक चर्चाएँ होती है—उपदेश-प्रवचन होते है—कथा सत्संग चलते है—कीर्तन भजन-गायन-वादन होते है। इन अवसरों पर लाखो लाख व्यक्ति जमा होकर पुण्यार्जन कर धार्मिक-आध्यात्मिक सुख-समृद्धि अर्जन करते है। कहना नहीं होगा कि मौनी अमावस्या का हमारे देश के सांस्कृतिक जागरण में बड़ा महत्त्व है।

श्री पंचमी

माघ सुदी पंचमी बड़ी रूप-दात्री, विद्यादात्री, सम्पदा-दात्री और ब्रह्मानन्द दात्री है। यह ऋतु-पूजा, रति-पूजा, वेद-पूजा, विद्या-पूजा, श्री-पूजा, शारदा-पूजा, प्रकृति-पूजा, देव-पूजा, वसंत-पूजा, और कृष्ण-पूजा का दिन है। उस दिन शरद की विदाई और वसंत का स्वागत होता है। प्रकृति मदमाती बन जाती है एवं प्राणी जगत् में मस्ती छाने लगती है। ऋतुराज वसंत अपनी स्वाभाविक गति से शनैः शनैः जन-जन मे, कण-कण में, डाल-डाल में, पात-पात में, कूल में, कछार मे, कुञ्ज मे कितान मे कली मे फूल में यौवन बिखेरता-मस्ती भरता आता है। पुरानी चीजें नई बन जाती हैं। जाडा कम हो जाता है—उष्णता दूर रहती है। मन में आनन्द छा जाता है। आँखों में रस भर जाता है। आम में बौर, सरसों में फूल, चांदनी मे चहक, प्राणियो में कसक एवं भूमि मे हरीतिमा देख मन कैसा-कैसा तो करने लगता है। हवा अच्छी लगती है—पानी अच्छा लगता है। बोली भाती है—गाना सुहाता है। गाने का, चहकने का, कूदने का, किलकने का, नाचने का, अठखेलियाँ करने का, अंगडाने का, शोर मचाने का जी चाहने लगता है। वसन्त का यह उत्सव एक नया विश्व-एक नवल सृष्टि बनाने, बसाने और सजाने-सँवारने आता है।

वसन्तारम्भ माघ शुक्ला पंचमी को होता है। यह उत्सव सरस, पाप-नाशक, स्वास्थ्य वर्द्धक एवं श्री निधि दायक है। उस दिन मन्दिर में श्रीकृष्ण पूजा की बडी तैयारी होती है। प्रात. काल से ही स्नानादि से पवित्र हो आराधना प्रारम्भ हो जाती है। बडी शोभा सजावट होती है। मण्डप बनते हैं—वदनवार लगता है। फल-फूल-पत्र-पुष्प जुटाए जाते है। रेशमी वस्त्र धारण किया-कराया जाता है। पीताम्बर की प्रतिष्ठा होती है। रत्नों से मणियों से एवं वस्त्राभरणों से मन्दिर सजाकर-मूर्ति सजाकर लोग कृतकृत्य-छलछन्द हो जाते हैं।

मण्डप में मूर्ति के समक्ष पूजा-अर्चना होती है। गीत होता है—नृत्य होता है—विविध वाद्य-यन्त्र बजते हैं। उत्सव की कथा कही सुनी जाती है। चरणामृत बँटता है और प्रसाद वितरण होता है। इस प्रकार लगाया जाने वाला वसन्तोत्सव परम सुख और धन-धन्य देने वाला होता है। उत्सव करने वाला आयु, आरोग्य, रूप, ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि, ऋद्धि, सिद्धि समस्त लोक-परलोक-सम्पदा की प्राप्ति करता है। पुराकाल में यह उत्सव मनाकर लोग सफल हो चुके है।

वसन्तोत्सव पर श्रीकृष्ण की सांगोपांग पूजा होती है। श्रीकृष्ण की मूर्ति के सम्मुख गोपियों का नृत्य होता है। मूर्ति को रोली लगाई जाती है, ताम्बूल चढ़ाया

जाता है और भांति-भांति का प्रसाद भोग लगाया जाता है। बड़े उल्लास बड़ी पवित्रता, बड़ी श्रद्धा से अपने पराये की और सबकी मंगल-कामना की जाती है। कहा गया है कि उस दिन उस अवसर पर मन्दिर को खूब सजाना चाहिये। सबको निमन्त्रण देना चाहिये। खूब प्रसाद जमा करना चाहिये। कृष्ण की पूजा में राधा के साथ—गोपियों के साथ मिलकर वीणा-मृदंग बजाते हुए नर्तन करना चाहिये। पूजा के अन्त मे भगवान् की आरती उतारनी चाहिये-दान देना चाहिये—प्रसाद बांटना चाहिये और सकल कल्याण कामना करनी चाहिये।

वसन्त पचमी के दिन लोग खेत-तड़ाग और वन-बाग में निकल जाते हैं। उन्हें पीली सरसों का निमन्त्रण मिलता है। वे सरसों के फूल तोड़ लाते हैं। बच्चे सोल्लास वे फूल अपने कानो पर रखते हैं। उस दिन सरसों का तेल शरीर पर मला जाता है। कही ताजा फूल मसलकर शरीर की मालिश होती है। इससे शरीर में शक्ति आती है। रोग दूर होता है। मच्छड़ों के काटने का कोई प्रभाव नही होता है। उस अवसर पर आम का बौर तोड़ा जाता है। बौर का रस निकाला जाता है। यह रस विष-मुक्ति-दाता है। सांप, बिच्छू, छिपकली आदि के काटने का विष इससे दूर किया जाता है। आम का फूल मसल कर आग में जलाने से मच्छड भागते हैं। फूस की राख कीट-पतंग-मच्छड भगाने के काम में आती है। यह राख सादगी औषधि है। इससे पेचिस एवं खूनी आंव आदि कई रोग दूर होते हैं। वसन्त पचमी के दिन से ही अखाड़ो पर चहल-पहल बढ जाती है। खेल-कूद, कुश्ती-दंगल का आयोजन होता है। बच्चों की खल्ली छुलाई जाती है। नई किताब प्रारम्भ होती है। नया संकल्प लिया जाता है और नया कार्य शुरू होता है। संक्षेप में यह पर्व त्योहार-उत्सव जगत् में जीवन के लिए, जीवन में यौवन के लिए प्रकृति में प्रेम के लिए और प्रेम में आनन्द के लिए आता है। श्री पचमी का व्रती सदा सुखी-मंगल मुखी होता है।

श्री पंचमी के दिन ही सरस्वती-पूजा का विधान है। सम्प्रति सरस्वती-पूजा ने एक सांस्कृतिक पूजा का रूप ग्रहण किया है।

भीष्माष्टमी

माघ शुक्ला अष्टमी को भीष्माष्टमी व्रत का विधान है। इस तिथि को भीष्मपितामह के लिए तर्पण का महत्त्व है। इस अवसर पर तिल, जो, गन्ध, पुष्प तथा गंगाजल के साथ जो कोई श्राद्ध या तर्पण करता है, वह अभीष्ट

प्राप्त करने में सफल होता है। चूंकि भीष्म निःसन्तान थे और चूंकि वे सबके पितामह माने गये हैं, अतः सबका यह कर्त्तव्य है कि उनके श्राद्ध तर्पण करें।

भीष्माष्टमी व्रत सम्बन्धी कथा इस प्रकार है—

महाराज शांतनु और भगवती गंगा के एकलौते पुत्र का नाम था देवव्रत। ये जब तक धरती पर रहे ब्रह्मचारी-सदाचारी रहे। महाराज शांतनु एक बार जब शिकार से लौट रहे थे उन्हें गंगा पार करना था। जब गंगा पार कर रही थी एक धीवर पोषिता कन्या। वह बड़ी सुन्दरी थी। महाराज उस पर मोहित हो गये। महाराजा ने धीवर से भेंट कर उस कन्या को जिसका नाम मत्स्यगंधा था अपने विवाह के लिए मांगा। धीवर ने कहा—महाराज! आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं, यदि मत्स्यगंधा—महारानी बनी भी तो इसकी सन्तान राजा होने से रही।' शांतनु अपने पुत्र को बड़ा प्यार करते थे। महाराजा चुपचाप अपनी राजधानी लौट आये और वहाँ वे चिन्ता युक्त हो अस्वस्थ होने लगे। महाराजा को ऐसा देख देवव्रत ने इसका कारण जानना चाहा। कारण मालूम होने पर देवव्रत जो पिता को अत्यन्त प्यार करता था और उनके लिए अपना प्राण देने के लिए भी तैयार था, धीवर के पास गया और उससे अनुनय विनय के साथ कहा कि वह मत्स्यगंधा का विवाह महाराजा से कर दे। धीवर ने अपनी आपत्ति बतलाई। इस पर देवव्रत ने कहा—मैं विश्वास दिलाता हूं कि मत्स्यगंधा का ही पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होगा? यही नहीं मैं उसकी सारी सहायता करूंगा? यदि इस पर शंका हो तो मैं आजीवन विवाह ही नहीं करूंगा। धीवर को और भी विश्वास दिलाने के लिए देवव्रत ने अपनी माता गंगा की शपथ लेकर प्रतिज्ञा की। इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण ही देवव्रत का नाम उस दिन से भीष्म कहा जाने लगा। पुत्र की यह प्रतिज्ञा जानकर पिता ने प्रसन्न हो पुत्र को इच्छा मृत्यु दी।

भीष्म जब तक रहे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते रहे। जब महाभारत शुरू हुआ तो उन्होंने यह जानते हुए भी कौरव दोषी हैं, उनका साथ दिया, क्योंकि उन्होंने कौरवों का नमक खाया था। भीष्म ऐसे दृढ़प्रतिज्ञ थे कि उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा भंग करा दी। वे शय्या पर पड़े-पड़े मरते भी युधिष्ठिर को विश्व कल्याणकारी सन्देश दे गये। भीष्म की इच्छा मृत्यु हुई।

माघी पूर्णिमा

माघ मास की पूर्णिमा माघी पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके देवता हैं बृहस्पति। बृहस्पति देवताओं के गुरु हैं। इस दिवस पर सारे स्वर्ग-संसार देव-गुरु बृहस्पति की पूजा समस्त सम्पदा वैभव से करते हैं। उनकी यह पूजा वांछित वर देने वाली होती है। मानव इस पूजा से पवित्र हो आत्मोन्नति करता है तथा लोक-परलोक में सम्यक् पद प्राप्त करता है।

कहा जाता है कि एक बार विश्व-भगवान् ने तक्ष प्रजापति नामक राजा के घर शंख रूप में—कन्या स्वरूप जन्म लिया। राजा तक्ष की यह शंख-कन्या प्रयाग-राज के पास यमुना में—कालिन्दी में कमल पुष्प पर मिली थी। राजा उस शंख-कन्या—कमल शिशु को अपने घर ले आये। रानी ने उस शिशु का सारी मातृ-मर्यादा से लालन-पालन किया। यह पुनीत घटना माघी पूर्णिमा के दिन हुई थी। तब से यह दिन अति यशस्वी माना गया। इस पूर्णिमा का महत्त्व उसी दिन से इतना अधिक है।

जीवन में स्नान का बड़ा महत्त्व है। स्नान प्रातःकालिक होना चाहिये। ठंडे जल में कूप-सर-सरिता में सूर्योदय के समय किया गया स्नान स्फूर्तिदायक होता है। इससे सबके सब लाभान्वित होते हैं। इससे प्रत्येक अंग की सफाई होती है और स्वस्थता प्राप्त होती है। स्नान में गंगा स्नान सर्वोत्तम है। गंगा जल अपनी महत्ता के लिये विश्वविश्रुत है। गंगा जल अमृत है। गंगा जल में एक गोता सकल कल्मष नाशक है। एक बार का गंगा स्नान युग-युग के पाप से मुक्ति दिलाता है। नियमित गंगा स्नान अक्षय यौवन और सुदृढ़ स्वास्थ्यदाता है। हमारे यहाँ स्नान एक पर्व है—त्योहार है—व्रत है—पूजा है। ऐसे विशेष पूजा-पर्व-त्योहार हैं, एकादशी स्नान, पूर्णिमा स्नान, कार्तिक स्नान, गंगा सप्तमी, गंगा-दशहरा, संक्रान्ति और शिवरात्रि। कुंभ पर स्नान का महत्त्व है। ग्रहण में स्नान आवश्यक है। काशी, प्रयाग, हरद्वार आदि बड़े-बड़े तीर्थ स्नान के लिये ही प्रसिद्ध हैं। स्नान के अवसरों पर कितने ही बड़े-छोटे मेले हमारे वर्ष भर के कार्यक्रम हैं।

इन स्नानों में माघी पूर्णिमा का सरसरिता सागर स्नान बड़े पुण्य का, बड़े सौभाग्य का होता है। उस दिन सभी जलाशयों में अति प्रातः बेला ही स्नान प्रारम्भ हो जाता है। कहा जाता है कि इस अवसर पर एक-एक डुबकी सौ-सौ जन्मों को पुण्य देने वाली होती है। इस दिन गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, ताप्ती, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, सरयूपर तथा सागर तट पर कन्याकुमारी

आदि में अपार भीड होती है। लोग मीलो और कोसो से चलकर स्नानार्थ एकत्र होते हैं। कहा जाता है कि माघी पूर्णिमा के दिन मानव, देव, गन्धर्व, किन्नर सबके सब स्नानार्थ उतर पड़ते हैं—चल पड़ते हैं। इस अवसर पर तीर्थों की तो पूछिये ही नही। काशी प्रयाग हरद्वार का तीर्थ महत्त्व बढ जाता है। दक्षिण का कुम्भकोणमका महामाघ सरोवर अति-प्राचीन काल से पवित्र समझा जाता रहा हैं। कहा जाता हैं कि माघी पूर्णिमा के दिन विश्व की समस्त पुण्य सलिलाएँ यहाँ आ जाती हैं। उस दिन देश के कोने-कोने से लोग वहाँ जमा होते हैं और स्नान कर पाप धोते हैं तथा पुण्य सचय करते हैं।

इस अवसर पर सरिता सरोवर के साथ सागर स्नान का भी बड़ा पुण्य है—बडा महत्त्व है। यह स्नान वहाँ और भी पुण्यमय बन जाता है, जहाँ संगम है। रामेश्वरम् में बंगसागर और भारत महासागर के संगम है। कन्या कुमारी बग, अरब और भारत महासगर का संगम है। इसी तरह गगा सागर में गंगा और सागर का सगम है। माघी पूर्णिमा के दिन सगम-स्नान करने वाला सशरीर स्वर्गयात्रा पर जाता है।'

ऐसा मालूम पड़ता है कि माघी पूर्णिमा में स्नान का ही सर्वाधिक महत्त्व है। इसी स्नान के लिए बहुतेरे माघ मे ही स्नान के लिए सरिता तट पर आते हैं। मास भर व्रत और स्नान पवित्रता पूर्वक करते हैं। इस मास से शीत की विदाई होती है और बसन्त का आगमन होता है। फलतः ऐसा लगता है कि हम एक जीवन से दूसरे जीवन मे, प्राचीन से नवीन मे प्रवेश करते हैं।

जानकी नवमी

फाल्गुन कृष्ण नवमी जानकी नवमी, सीता नवमी या मैथिली नवमी कही जाती है। इसी तिथि को जानकी जी प्रगट हुई थी, जब कि राजर्षि जनक राज्य में *भयानक दुर्भिक्ष होने के कारण स्वयं हल चलाकर खेती,* खूब खेती और एक मात्र खेती करने का आदर्श उपस्थित कर रहे थे। यह तिथि जानकी जी की जन्मतिथि मानी जाकर उस दिन व्रत रखा जाता है। यह व्रत सुख-सुहाग चाहने वाली स्त्रियो के लिए आवश्यक है।

जानकी नवमी के दिन स्त्रियाँ प्रातःकाल ही सर-सरिता कूप में स्नान से निवृत्त हो हल जुते खेत की मिट्टी से जानकी जी की प्रतिमा बनाती है। प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा करने के बाद कमल-कमलिनी के फूल सहित धान का लावा, मखाना तथा

गोदुग्ध और गुड़ जमाकर जानकी जी की विधिवत् पूजा की जाती है। पूजा के अन्त में भोग नैवेद्य प्रदान कर चावल, जौ तथा तिल आदि का हवन किया जाता है। भजन के साथ लोकगीत गाये जाते हैं। पूजांत में कथा सुनी जाती है।

एतद्विषयक कथा इस प्रकार है—त्रेता युग में दशरथ नाम के एक प्रतापी राजा थे। उनकी तीन रानियाँ थी और चार पुत्र थे। पुत्रों के नाम थे। राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र ऋषि अपने आश्रम सब प्रकार की शिक्षा के लिए ले गये। जिन दिनों उनकी शिक्षा समाप्त हुई उन्हीं दिनों मिथिला के राजा जनक की पुत्री जानकी का स्वयंवर रचा गया। गुरु-शिष्य तीनों मिथिला की राजधानी जनकपुर पहुँचे। गुरु प्रताप से राम ने शिव-धनुष तोड़ा और फलस्वरूप राम विवाह जानकी से हुआ। जब राम जानकी अयोध्या आये तो राजा दशरथ ने राम को राजगद्दी देने का विचार किया। यह बात राजा की रानी कैकेयी को पसन्द न आयी। उसने राजा से वर माँग कर राम जानकी को जंगल भिजवा दिया। जंगल में जानकी को छल से अपहरण कर राक्षसों का राजा रावण लंका ले गया। जब राम को इन सब बातों का पता लगा तो वे एक सेना लेकर लंका पहुँचे। उन्होंने युद्ध में रावण को मारकर जानकी का उद्धार किया। वनवास पूरा होने पर राम-जानकी अयोध्या लौट आये। राम-जानकी राजगद्दी पर बैठे। उन्होंने बहुत दिनों तक प्रजा-कल्याण किया।

शिवरात्रि

शिव-रात्रि बड़ी गरिमा-महिमा-मर्यादा तथा आदर-प्रेम-पवित्रता के साथ शैवों द्वारा मनायी जाती है। एतद्विषयक बड़ी भव्य-दिव्य-पावन कथा स्कन्द-पुराण में वर्णित है। कथा इस प्रकार है :—

जम्बू द्वीप में एक महानगर था, जिसका नाम वाराणसी था। वहाँ एक शिकारी कुल का एक व्यक्ति था। वह नाटा था—काला था। खूँखार था—उग्र था। एक दिन शिकार के सिलसिले में तरह-तरह के मारे पक्षियों को ढोकर ले जाने में वह बड़ी थकावट का अनुभव करने लगा। उसे डेग-डेग पर आराम के लिए रुकना पड़ने लगा। अन्ततः शाम हो गयी और उसे सारवो जंगल में रात बितानी पड़ी। रात्रि के निविड़ अन्धकार एवं इधर-उधर घूमने वाले जानवरों

से भयभीत हो, उसने एक विल्व वृक्ष पर चढ़कर रात बितानी चाही। उसने अपने शिकार को वृक्ष की डालो पर छिपा दिया और वह विहान की प्रतीक्षा करने लगा। फाल्गुन का महीना था, फलत: जोरो की ओस पड रही थी और काफी ठढक लग रही थी। शिकारी भयभीत था, भूखा था और ठण्ड से कॉप रहा था। ऐसा लगता था मानों रात उसे काट खायेगी। वह त्राहि-त्राहि कर रहा था। पेड के नीचे शिवलिंग था। परिस्थिति ऐसी हुई कि जब जब आसन बदलता था, तब-तब ओस और विल्व पत्र शिवलिंग पर गिर जाते थे। सौभाग्य ऐसा बैठा कि शिवजी ओस और विल्व पत्र से पूजित होकर शिकारी पर प्रसन्न हुए और उसे वरदान और प्रसाद के अधिकारी समझने लगे। शिकारी रात बीतने पर घर आया और कुछ देर बाद उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु का समाचार पाकर यमदूत उसे लेने आये। उधर जब शिवजी को यह पता लगा कि उनका भक्त शिकारी मृत्यु को प्राप्त हुआ तो उन्होंने अपने गण को शिकारी को कैलास लाने के लिए भेजा। यमदूत अड और दोनों में यमदूत-शिवगण में घोर लड़ाई छिड गई। लडाई मे शिवगण तगडे पडे और उन्होंने यमदूतो को मार भगाया। बेचारे यमदूत लज्जित हो गये अपने स्वामी के पास पहुँचे और वहाँ यमराज से अपनी वेदना कथा कही। यमराज स्वयं लज्जित हुए और वे तुरन्त शिवजी से मिलने कैलास पहुँचे। वहाँ सिंह द्वार पर शिवप्रेमी प्रधानमन्त्री नन्दी खड़े थे। यमराज ने अपनी दुर्दशा की कथा सुनाई और उसी बहाने शिवजी से मिलने के उद्देश्य बतलाये। उन्होंने वर्णन क्रम में इस बात पर चिन्ता प्रकट की और ऐसे घोर पापी हत्यारे के लिए शिव-संरक्षण पर आश्चर्य और नाराजगी प्रगट की। प्रधानमन्त्री नन्दी ने यमराज जी को टोकते और रोकते हुए कहा—महाराज, यह ठीक है कि वह शिकारी पापी है, हत्यारा है किन्तु मरने के पूर्व वह भूखा था और मूर्ख शिकारी अनजान मे ही सही उसने विल्व पत्र से शिवरात्रि व्रत रखता हुआ शिव की अर्चना-आराधना-पूजा करता रहा। शिकारी की अनजान भक्ति शिवजी को प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त समझी गयी और उसके लिये कैलास में स्थान सुरक्षित और संरक्षित हो गया। यमराज जी नन्दी की मर्म भरी उक्ति सुनकर अपने विचार मे लीन हो गये और बिना एक शब्द बोले वे यमलोक लौट आये।

शिवरात्रि व्रत मे शिवजी की पूजा इसी प्रकार भूखा-प्यासा रहकर जल और बेल के पत्र के साथ होती है। इस व्रत-पूजा से शिवजी प्रसन्न होते हैं और शिव भक्त सदा-सदा के लिए शिव के प्यारे बनकर कैलाशवास करते हैं।

शिव भगवान् हैं। उनकी महिमा अपार है। वे कल्याण कर हैं—वे विनाशक रहे हैं। वेदों-पुराणो में उनके चरित्र वर्णन हैं। देवी-देवताओ ने ऋषि-मुनियो-

आर्य-अनार्यों ने उनके माहात्म्य का विपुल विश्लेषण किया है। रामायण तथा महाभारत में उनके यश का अभूतपूर्व उल्लेख है। लोक-गाथाओं एवं लोक-कथाओं में युग-युग से उनके कल्याण-दयालु-कृपालु रूप का अजस्र चित्र आता है। शिवजी विभूतियों-त्रिदेवों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं। यों तो शिवजी के नाम अनन्त हैं, किन्तु मुख्य नाम इस प्रकार हैं :—शिव, अघोर, प्रभु, भागवत, चन्द्र-शेखर, गंगाधर, गिरीश, हर, ईशान, जटाधर, जलमूर्ति, काल, कालंजर, पशुपति, शंकर, सर्वसदाशिव, स्वयभू, शम्भु, त्र्यम्बक, उग्र, विरूपाक्ष, विश्वनाथ, वैद्यनाथ और रुद्र।

शिवरात्रि में शिवव्रत में इन्हीं शिव को अनाहार रहकर अखण्ड पूजा होती है और व्रतधारी पूजा समाप्त कर लोक-परलोक में सुख-शान्ति भोग कर कैलाश-वास करते हैं।

होली

होली शिशिरान्त और वसन्तारम्भ का उत्सव है। शिशिरान्त—शीतान्त और वसन्तारम्भ—उष्णारम्भ का द्योतक है। फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा की रात में होली जलायी जाती है। उस रात चन्द्रमा जो सोमरस का दाता है। कफ के उद्रेक में सहायक होता है। उस समय से ज्यों-ज्यों चन्द्रकला क्षीण होती है त्यों-त्यों कफोद्रेक कम होता है। इसीलिए यह रात्रि ही निवृत्ति के लिये सर्वोत्तम तिथि मानी गयी है। होलिकोत्सव के रात्रि प्रधान का भी यही कारण है।

फाल्गुन में फाग का राग आनन्द विभोर करने वाला होता है। प्रकृति में नयी बहार आ जाती है। धरित्री वासन्ती वसना हो इतराती इठलाती है। चम्पा की महक, केतकी की गमक, मालती की सुगन्ध, मौलश्री के सौन्दर्य तथा गुलाब की शोभा सब के मन हर किसी को मदमस्त कर देते हैं। अशोक राग बाँटता है—हरसिंगार डाली सजाता है—नाग केसर मतवाला बनता है मल्लिका झूमने लगती है। खेतों में फसलें अँगड़ाई लेने लगती हैं। कोकिल कूक सुनाती है। पक्षी कलरव करते हैं। सारी प्रकृति स्वागत में—अभिनन्दन में भूली-सी जाती है। और होली आती है आनन्द पर्व-अभिनन्दन पर्व उल्लास पर्व और संस्कृति पर्व बनकर।

होलिकाग्नि वायु मंडल को कीटाणु मुक्त करने वाली होती है । होलिकोत्सव की विधि में धुँआ-सेवन का विधान है । इस अवसर पर गाना हँसना, निश्शंक होकर बोलना बड़ा लाभदायक होता है । धूल-भस्म से शरीर की सफाई होती है और रंग गुलाल और अबीर कफादि निवृत्ति में सहायक होते हैं । यह उत्सव स्वास्थ्य रक्षक होता है ।

पूर्णिमा की रात में जब होली जलती है, बच्चे खूब ही हल्ला करते है । कहा जाता है कि एक समय एक बड़ी प्रचंड राक्षसी हुई ढुण्ढा । वह बालकों का मांस खाती थी । वह माली नामक राक्षस की पुत्री थी । वह शिवाराधना कर शिव से वरदान प्राप्त कर तीनों लोकों को आतंकित करने लगी । उसके अत्याचार से सारी मेदिनी त्राहि-त्राहि करने लगी । उससे रक्षा के लिये बालक-वृन्द सामने आया । उसने उस राक्षसी को जला दिया । तब से यह उत्सव इसी रूप में मनाया जाता है । सूखी लकड़ी, उपल और घास-फूस जलाकर विधि पूर्वक गान-वाद्य और हँसी खेल के साथ आग लगायी जाती है और राक्षसी से, आतंक से, तथा अत्याचार से मुक्ति की कामना की जाती है । कहा जाता है कि इसी दिन बालक प्रह्लाद की बुआ होलिका आग में जली थी और भगवान् नृसिंह ने सारे संसार का उद्धार किया था ।

होली पूर्णिमा के दूसरे दिन चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को आती है । उस दिन होली धूल की वन्दना का विधान है । उस दिन घर-द्वार की सफाई होती है । आँगन लीपा जाता है, चौका पूरा जाता है, अल्पना लिखी जाती है । कलश स्थापित होता है और उसे चन्दन चर्चित तथा पुष्प सुज्जित करते है । धूप दी जाती है, नैवेद्य चढ़ता है और अर्घ्यदान होता है । होली को सम्बोधनकर पुराण में कहा गया है—हम आपकी पूजा करते है । हमारा अर्घ्य स्वीकार करें । हम नमस्कार करते हैं । हमें पापमुक्त करें । हमें आयु दें-धन दें सपत्ति दें । वास्तव मे फाल्गुनोत्सव करने वाले सर्व मनोरथ सिद्ध आधिव्याधि मुक्त हो जाते है । वह पुत्र-पौत्र सहित ससार सुख का उपभोग करता है । इस तिथि का इस उत्सव का बडा महत्त्व है ।

इसी दिन दोल यात्रा दोलोत्सव होता है । यह दोल यात्रा भगवान् श्री कृष्ण की है । दोलोत्सव कलियुग का सर्व प्रधान उत्सव माना जाता है । यह उत्सव कई दिनों तक चलता है । दोलस्थ कृष्ण के दर्शन सकल पाप मुक्त के होते हैं ।

स्कन्द पुराण में दोलोत्सव का विशद वर्णन है । कहा गया है कि इस उत्सव में गोविन्द स्वयं जनगण के आमोद-प्रमोद के लिये क्रीडारत होते हैं । सोलह स्तम्भों का वाला वेदिका युक्त मंडप प्रस्तुत किया जाता है । जिसे चारू चन्द्रा-

तप, माल्य, चामर तथा ध्वज वन्दनवार से सुसज्जित और सुशोभित किया जाता है। वेदिका पर देव प्रतिमा स्वयं पुरुषोत्तम रूप से विराजती है। उन्हें विविध भाव प्रकार से पूजा जाता है। तूर्यनाद, शंख ध्वनि, जयशब्द, स्तोत्र पाठ, ध्वज पताका, चामर और व्यजन आदि तरह-तरह के उपकरणों से महोत्सव होता है। उत्सव में देव ऋषि-मुनियों की भीड हो जाती है। श्री सूक्त द्वारा अभिषिक्त हो श्रीगोविन्द को दोलस्थकर झुलाया जाता है। दोलस्थ भगवान् के पूजा-दर्शन होते है। इनसे पाप-मुक्ति होती है। तीन बार दोलोत्सव में भाग लेने वाला तीनों तापों से छुटकारा पाता है।

होली और दोल-यात्रा के सम्बन्ध मे कितनी ही कथाएँ प्रचलित है। कोई कहता है कि भगवान् विष्णु ने होलिका या शंखचूडका वध कर होलिकोत्सव किया था। कोई इसे वसन्तोत्सव मानता है। कही इसे अन्नोत्सव और कही इसे स्वास्थ्य उत्सव माना गया है। और कही इसे कृषकोत्सव कहा है।

जो हो, आज होली हमारा महान् राष्ट्रिय पर्व है। यह हमारी संस्कृति के विकास तथा समृद्धि का पुरातन राष्ट्रिय पर्व है। इसमे मानवता के गौरव की परम्परा तथा मानव एकता और समता की झाँकी है। यह पर्व सारे भूमंडल में किसी-न-किसी रूप मे किन्तु समान हर्ष, उल्लास और उत्साह से मनाया जाता है। हमारा साहित्य इस उत्सव के वर्णन करने मे नही थकता। जनवाणी मे इसकी परम्परा पूरी गरिमा के साथ सुरक्षित है। हमारा विश्वास है, अनादिकाल से आता हुआ यह महापर्व अनन्त काल तक मानव संस्कृतिसभ्यता का यशोगान करता रहेगा।



परिशिष्ट

संवत्सर

सृष्टि, जीवन और काल आदि अन्त विहीन, शाश्वत, चिरन्तन और अजर-अमर-अनन्त हैं। इन तीनों के स्वामी त्रिदेव त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। ये तीनों भगवान् हैं। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु जीवन पोषणहार तथा शिव कल्याणकारी एवं संहारक हैं। वेद पुराणानुसार 'चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि। शुक्ल पक्षे समग्रे तु तदा सूर्योदये सति' अर्थात् भगवान् ब्रह्मा ने चैत्र मास की शुक्ला प्रतिपदा को सृष्टि-सृजन प्रारम्भ किया, भगवान् विष्णु ने सृष्टि का भरण-पोषण भार सम्भाला और भगवान् शिव ने सृष्टि के कल्याण तथा संहार का उत्तरदायित्व अपनाया। और उसी दिन उसी चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को संवत्सर का शुभारम्भ हुआ। कहा जाता है कि इस पुण्य-पवित्र तिथि को 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां धर्मसंस्थापनार्थाय' भगवान् विष्णु ने मत्स्यावतार ग्रहण किया एवं इसी दिन भगवान् शिव ने मां अन्नपूर्णा को प्रणाम कर ताडव का पूर्वाभिनय किया था।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा की यह तिथि परम पवित्र, भव्य, दिव्य, महिमा, गरिमा, माहात्म्य एवं महत्वपूर्ण है। विक्रम संवत्सर इसी तिथि से प्रारम्भ किया गया था। ईरानियों का नौरोज इसी दिन तड़क भड़क, धूमधाम, मान-मर्यादा तथा स्वच्छता सफाई से मनाया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय संवत् का नव वर्ष आज से ही प्रारम्भ होता है। भारतीय वैज्ञानिक पचांग की ग्रहनक्षत्र मास पक्ष सप्ताह तिथि गणना आज से ही शुरू की जाती है। आज से दिन बड़ा और रात छोटी होने की क्रिया होने लगती है।

अखिल भारतवर्ष में आसतु हिमाचल जब से चन्द्र दिवाकर है इस चैत्र शुक्ला प्रतिपदा तिथि को इस नव दिवस को पर्व के रूप में मानते हैं। यह नव दिवस पर्व मनाने की प्रथा परम्परा में आ रही हैं। प्राचीन वड्मय में इस पर्व प्रथा परम्परा का बड़े उदात्त शब्दो में उल्लेख पाया जाता है। अथर्ववेद शतपथ ब्राह्मण एवं कतिपय पुराण इसका मनोहारी वर्णन कर अघाते नही हैं। इतिहास बतलाता है कि महाराजा विक्रमादित्य के राज्यकाल में यह पर्व प्रतिवर्ष राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जाता था।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा की पुण्य तिथि पर व्रत रखा जाता है, पूजा-अर्चना की जाती है, त्योहार मनाया जाता है और पर्व आयोजित किया जाता है। इस दिन भवन-मन्दिर-मंडप-शाला की सफाई होती है। नद नदी तथा कूप-सरोवर मे स्नान किया जाता है। जल-दुग्ध-धूप-दीप-ताम्बूल-पुगीफल-फल-फूल-अक्षत-चंदन एव भजन-प्रार्थना से पूजन-अर्चन होता है। स्थान-स्थान पर पिछले वर्ष की घटनाओं पर विचार-विमर्श होता है तथा आनेवाले वर्ष के दिनो के सुखद एवं मगल कल्याणकारी बनाने के लिए सुचाव और सुझाव दिये जाते है तथा व्रत सकल्प किये जाते है। साथ ही वर्ष भर मे लोक-कल्याण और जन-कल्याण के लिए यज्ञ-पूजा, हवन आरती तथा जन-सभा तथा लोक सम्मेलन के लिए योजना परियोजना का संकल्प लिया जाता है। इस दिन विद्यादान, भूमिदान, धनदान, वस्त्र दान, घटदान, अन्नदान तथा भोजनदान की प्रथा भी कई स्थानो में देखी गयी है। पचाग की गणना तथा नव वर्ष की यात्रा इसी तिथि से प्रारम्भ की जाती है।

चूँकि यह सृष्टि-रचना की प्रथमा नव तिथि है, अत इसे भगवान् ब्रह्मा की पूजा के रूप मे मनाना चाहिए एव चूँकि यह नववर्ष की प्रथम नवतिथि है, अतः इसे नव दिवस के रूप में मनाना चाहिए। पुराण और साहित्य मे तथा पूजा पूर्व संस्कार विधि में इस तिथि एवं इस दिवस के मनाने की महिमा एवं पद्धति का वर्णन मिलता है। कहा गया है कि आज की तिथि पर आज के दिन प्रातःकाल से ही मनाने की तैयारी करनी चाहिए। नद-नदी-कूप-सरोवर-जल नीर से स्नान कर नवलधवल वस्त्र परिधान कर, स्वस्थ-संयमी बनकर, धूप-दीप, अक्षत-चन्दन, फल-फूल तथा दुग्ध जल के साथ पवित्र पावन पुनीत संकल्प लेना चाहिए। काष्ठ अथवा बालुका की वेदिका पर स्वच्छ श्वेत वस्त्र पर केशरित चावल के अष्टदल कमल की अवतारणा करनी चाहिए। उस कमल पर सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्मा की मूर्ति स्थापित कर इहागच्छ इहातिष्ठ, ओऽम् ब्रह्मणे नम. आदि प्रार्थना तथा गायत्री मन्त्र मे उनका पूजा हवन होना चाहिए। घृत-दीप से आरती उतारने के बाद उनसे प्रार्थना-याचना इन शब्दों मे करनी चाहिए—

हे भगवान्
हमें
रूप दो
धन दो
यश दो
स्वास्थ्य दो

मकर संक्रांति

यों तो संक्रान्ति उस तिथि को कहते हैं जिसमें सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है, किन्तु यहाँ इसका विशेष प्रयोग है। जनवरी महीने में प्रायः १३–१४ या १५ तारीख को जब सूरज राशि परिवर्तन करता है—वह मकर में प्रवेश करता है तब उसे मकर संक्रान्ति कहते हैं। यह तिथि बड़े महत्व की समझी जाती है। यह दिन वर्ष का प्रारम्भ माना जाता है। उस दिन पहली बार नवान्न पकाया जाता है। फलतः यह पक्वान्न पर्व कहा जाता है। धर्मशास्त्रानुसार पक्वान्न देवभोग के लिए तैयार होता है। मनुष्य तो भोग के बाद मात्र प्रसाद पाता है, जो बचता है वही खाता है। मकर सक्रान्ति के दिन पक्वान्न तैयार कर सूर्य भगवान् को चढाया जाता है। भगवान् सूर्य शक्ति और सामर्थ्य के स्रोत है, दाता है एवं सब मे शक्ति सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

यह ठीक है इस पुण्य अवसर पर भगवान् सूर्य की पूजा होती है। किन्तु उन देवताओं को भी नही भुलाया जाता है जो हमारे अन्न और पशु सम्पत्ति के दाता और रक्षक हैं। वायुदेव जलदाता है। जल से खेती होती है अन्न उपजता है, घास उगती है। उसे हम खाते है—पशु खाते हैं। अतः उनकी भी पूजा धूमधाम से होती है यही नही इसके साथ हम अपने गृह-देवताओं को भी, जो सतत हमारी रक्षा और कल्याण में तत्पर रहते है पूजते हैं।

गाँवो में प्रायः प्रत्येक घर मे आंगन होता है, जहाँ अन्न सुखाया जाता है, विवाह होता है, भोज भात होता है। इस आँगन मे सूर्य की प्रखर किरणें सदैव जाती हैं। पूजा के लिए इसी आगन को ठीक किया जाता है। उसे साफ किया जाता है एव गोबर से लीपा जाता है। वहाँ कमलांकित अर्पणा खचित होती है एवं सूर्यदेव अपनी दो देवियों संध्या और छाया के साथ विराजते हैं। ये दोनों देवियां विश्वकर्मा की दुहिताएँ है।

सूर्य भगवान् और इनकी इन दो प्रियतमाओं की बडी मनोहारिणी कथा है। सुकुमारी संध्या अपने पति की प्रखर ज्वाला को सहन करने में असमर्थ थी। फलतः वह इसके सहने की शक्ति प्राप्त करने की सोचने लगी? अन्त मे उसने तप करने का निश्चय किया। वह तप करने चली और वह अपने स्थान पर छाया को छोड कर घर से चली गयी। जब सूर्य देव घर आये। तब वे संध्या को नहीं पाकर वियोग मे बडे दुःखी हुए और उसी क्षण उसे ढूँढने निकले। रास्ते में उन्होंने एक सुन्दरी घोड़ी देखी। वे उसके रूप लावण्य पर मुग्ध हो गये। उन्होंने अपने को घोड़े मे बदलकर उससे विवाह कर लिया।

चैत्र संक्रांति से शुरू होता है। यह तिथि प्रायः १३–१४ अप्रैल को आती है। इस तिथि की बड़ी महिमा गरिमा है।

भारतीय जीवन सदा से ही त्याग और धर्म का रहा है। हम अपने धार्मिक अनुष्ठान के लिए सर्वोत्तम तिथि, लगन किंवा दिन खोजते हैं। ऐसे शुभ की सूचना हमें ब्राह्मणों, ज्योतिषियों और पंडित पुरोहितों से मिलती है। पुराकाल में जब पोथियाँ नहीं छपती थी, सारी बातें हस्तलिखित रहती थी। ऐसी हस्त-लिखित पोथियाँ कम थी—किसी-किसी गाँव में कहीं-कहीं एक आध फलतः पूजा पर्व, व्रत त्योहार, धर्म-कर्म तथा ब्याह संस्कार की शुभ तिथि जानने के लिए लोग ब्राह्मणों, पुरोहितों, ज्योतिषियों तथा पंडितों को घेरे रहते थे। वे उनसे ग्रह-उपग्रह की गतिविधि ऋतु की बातें, नक्षत्र-राशि की स्थिति तथा भविष्य की बातें जानना चाहते थे। इनका ज्ञान वर्षारम्भ में ही आवश्यक था। फलतः वर्ष का यह प्रथम दिन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण बन जाता था। इन्हीं कारणों से इस तिथि की महत्ता आज भी उसी रूप में है।

नववर्ष और वर्षारम्भ की नवीन तिथि से सम्बद्ध एक दिव्य कथा है। कहा जाता है एक बार नारद भगवान् गंगास्नान कर रहे थे। उन्होंने देखा मछलियों का जोड़ा आनन्दरत है। उस मदमाते दृश्य ने नारद के हृदय में विवाहित जीवन बिताने की कामना की—प्रेरणा दी और सदा ब्रह्मचारी नारद मुनि पारिवारिक जीवन की सुखद कल्पना में खो गये। उन्होंने ब्रह्मचर्य जीवन त्याग कर गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। अब प्रश्न यह आया कि उनके लिए लड़की कहाँ मिले और ब्याह के लिए व्यय कहाँ से आये। बहुत सोच विचार के बाद उन्होंने निश्चय किया कि वे द्वारका जायेंगे और वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण से, जिनकी सोलह हजार एक सौ साठ रानियाँ थी, एक रानी माँग लेंगे। उनका ख्याल था कि श्रीकृष्ण कम-से-कम एक रानी तो अवश्य ही दे सकते हैं। साथ ही उन्होंने यह भी सोचा कि श्रीकृष्ण के पास विपुल सम्पत्ति है। वे थोड़ी सी सहूलियत से दे सकते हैं। वे खुशी-खुशी श्रीकृष्ण के पास पहुँचे और अपना युगल निवेदन उनके सम्मुख रखा। प्रस्ताव सुनकर श्रीकृष्ण को हँसी तो आयी किन्तु उन्हें कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। हाँ रसिक होने के कारण उन्होंने इसी बहाने नारद को शिक्षा देने का भी निश्चय किया। उन्होंने कहा कि नारद श्रीकृष्ण की सब स्त्रियों को घूम घूमकर देख आये। जो खाली मिले उसे ले लें। बेचारे नारद, जो अज्ञानान्ध हो चुके थे, बड़ी प्रसन्नता और उत्सुकता से चले। वे सबके पास गये किन्तु कहीं भी किसी को खाली नहीं पाया। सब जगह श्रीकृष्ण मौजूद थे—बच्चों से तरह-तरह के खेल-खेल रहे थे। यह ऐसा दृश्य था कि नारद का मन विवाहित जीवन बिताने के लिए और भी व्याकुल हो उठा। इसी सोच-

विचार मे वे प्रातःकाल स्नान करने गये उन्होंने डुबकी लगायी और जब पानी मे बाहर निकले तो बडे आश्चर्य से देखा कि वे नारद से बदल कर नारदी एवं पूर्ण यौवना सुन्दरी बन गये हैं। वे आश्चर्यचकित ही हो रहे थे कि एक युवक साधु सामने आया। वह नारदी को अपनी कुटिया मे पकड ले गया और वहाँ उसने रात मे विवाह कर लिया। दोनो आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगे। उनके एक एक कर साठ बच्चे हुए। नारदी दुखी थकी और चिन्तित रहने लगी। और जब साठवाँ बच्चा पैदा हुआ तब भगवान् से इस जीवन से मुक्ति के लिए प्रार्थना करने लगें। उनका पश्चात्ताप असली था। उनका मोह-अन्धकार दूर हो गया था। भगवान् को दया आयी। पति साधु लुप्त हो गया और भगवान् शख, चक्र, गदा और पद्म सज्जित उनके समक्ष उपस्थित हुए। उन्होने कहा—"नारद! वर मांगो।" नारद बोले—"भगवान् मैं क्या कहूँ? आप सब जानते है। मैं मूर्ख था—सोचा था कि विवाहित जीवन फूलो की सेज है—आप मेरी रक्षा करें - मेरा उद्धार करें। भगवान् ने "तथास्तु" कहा। नारद अपने पुराने रग मे आ गये। भगवान् ने उन्हें छाती से लगा लिया और पूछा कुछ और चाहिए क्या? इस बीच सभी बच्चों ने जो भूखे थे नारद को चारो ओर से घेर लिया। वे सब रो रहे थे—हल्ला कर रहे थे। नारद ने कहा—"अब मैं कुछ नही चाहता। इन बच्चो को चुप कीजिये—इन्हें सतोष दीजिये।" भगवान् न क्रमशः एक-एक वर्ष के लिए सबको संसार का राजा बना दिया। इस प्रकार हिन्दू वर्ष साठ वर्ष पूरे होत है—एक चक्र पूरा होता है। सक्राति में कपिला षष्ठी आती है। यह वही दिन है, जिस दिन कि नारद का पुनः परिवर्तन हुआ था। तब से इस दिन का महत्व उतना बढ गया है।

नारद या नारदी के साठ बच्चों के नाम है—प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिर, श्रीमुख, भव, युव, धातु, ईश्वर, बहुदन्य, प्रमथी, विक्रम, वृषु, चित्रभानु, सुभानु, तरण, प्रतीव, व्यास, सर्वजित, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नंदन, विजय जय, मर्मथ, दुर्मुख, हेमालम्बी, विलम्बी, विकारी, शर्वर, प्लव शुभकृन, शोभन, क्रोधी, विश्ववसु, पराभव, प्लवंग, किलक, सौम्य, साधारण, कृत, परिधवी, प्रमाथी, आनन्द, राक्षस, नल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्ति, रौद्री, दुर्मति, दुन्दुभी, रुधिरोद्गारी, रक्त श्री, क्रोधन और अक्षय।

श्री नारद के इन साठ बच्चों का राज्यक्रम ही चान्द्रवर्ष के साठ वर्षों का चक्र है। और वर्ष के बारह ग्रह है जो कल्प पुरुष को मध्य मे रखकर चक्कर लगाते हैं। वास्तव मे यह बारह ग्रह उसके मस्तक मुखमंडल वक्ष पेट दाँत आँख जांघ और पैर आदि बारह अग हैं। भारतीय कलेंडर पंचांग कहा जाता है। इसके पाँच अंग हैं—तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण। समुद्रपावांशी तिथि

पर, जीवनाकांक्षी वार पर, पुण्याकांक्षी नक्षत्र पर स्वास्थ्याकांक्षी योग पर और साफल्याकांक्षी करण पर जोर देते हैं। इस तरह यह स्पष्ट है कि पंचांग का हमारे जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह हमारे भूत वर्तमान और भविष्य का प्रहरी, ज्ञाता और अनुलेख होता है। यह पचाग इसी अवसर पर पूर्ण हिसाब किताब के साथ तैयार होता है और प्रारम्भ होता है। यह दिन हमारा नव वर्ष हमारा नव दिवस और हमारा जीवन दिवस है। लेखाजोखा है जिसे लेकर चल-कर हम लोक पर लोक मे यशस्वी बनते हैं। यह तिथि धार्मिक तिथि सामाजिक तिथि दिवस तथा व्यावसायिक तिथि हैं। परमात्मा हमारा यह दिवस मंगल बनाये ताकि हमारा जीवन मगलमय हो।

मलमास

मलमास का अर्थ है अधिक मास। इसका पर्याय है मलिम्लच, अधिमास और असंक्रान्त मास।

बारह मास का वर्ष होता है। कभी-कभी तेरह मास का भी होता है। मास शब्द का प्रकृत अर्थ है चान्द्र मास, सौर मास नहीं। बारह चान्द्र मासों का एक चन्द्र वर्ष होता है। शास्त्र मे इसी आधार पर मलमास का अस्तित्व है। जब मलमास होगा, वर्ष तेरह मास का होगा।

जब दो अमावस्याओं का शेष क्षण एक सौर मास में पड़ता है तब मलमास होता है। मलमास होने पर दो चन्द्रमास होते है, इनमे पहला मल या मलि-म्लच तथा दूसरा चान्द्रमास के हिसाब से मलमास होता है। तिथि घटित मास ही चान्द्रमास है। चान्द्रमास दो प्रकार के है—मुख्य चान्द्र और गौण चान्द्र। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या इन तीस तिथियो में जो चान्द्र मास होगा उसे मुख्य चान्द्र और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त मास को गौण चान्द्र कहते हैं। शास्त्र में मास का विशेष उल्लेख है। किस-किस मास में कौन-कौन धर्म करना चाहिये इसका विशेष विधान मिलता है।

दो शुक्ल पक्षीय प्रतिपदा का पूर्व क्षण अर्थात् दो अमावस्या का शेष समय एक सौर मास में पड़ने से पूर्वोक्त साधारण लक्षणानुसार दोनो मास का एक ही मास होता है। शुक्ल पक्षीय प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त तीस तिथि स्वरूप मास एक नहीं, दो है। इनमें से पहला मल और दूसरा शुद्ध है। इसी से तेरह महीने का वर्ष होता है। कर्मयोग काल निर्णय के लिये ही ऐसा नाम पड़ा है।

शुक्लपक्षीय प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त जिस मास में रवि का संक्रमण होता है, वह मास पहले की तरह दो होते हैं। पहला मलिम्लच और दूसरा शुद्ध मास। श्राद्ध आदि शुद्ध मास में ही करणीय हैं। अधिमास को सकल मास करनेके लिये तेरह अर्थात् मलमास को ब्राह्मण बनाकर द्वादशाह श्राद्ध यज्ञकृत्य हैं। यज्ञ करने वाले इस मलमास में अपने पापों को विसर्जन कर पुण्यभागी बन अपने अभिलिषित फल की प्राप्ति करते हैं।

मलमास का कोई नियम नही हैं। अन्य मास की तरह अमुक मास के बाद मलमास होगा ऐसा कोई विधान नियम नही है। मलमास अन्य मास का अवलम्बन करके ही होता है।

शास्त्रो में लिखा है कि मलमास में सभी मासो का पाप जमा होता है अतः मलमास में कोई धर्म कर्म उचित नही हैं। किन्तु नित्य कर्म और कुछ नैमित्तिक कर्म जो मलमास में कर्तव्य हैं उन्हे तो करना ही पडेगा।

दिवा और रात्रि का परिमाण साठ दंड और तिथि का मान औसत से तीस दिन में इकतीस तिथि पडती हैं। इस प्रकार बारह दिनो मे बारह तिथि बढ जाती हैं। इस हिसाब से ढाई वर्ष में तीस तिथि बढती है। तीस तिथि बढने से ही मलमास होता है। मलमास होने पर एक ही नाम के दो चान्द्रमास होते हैं। उसमें फिर तीस दिन से अधिक का अन्तर नही होता है। अत चान्द्रमास मे होने वाली जितनी क्रियाएँ हैं वे कम-से-कम तीस दिनो के भीतर ही होती है।

प्रति तीसरे वर्ष मे मलमास हुआ करता है। एक वर्ष में मलमास का होना सम्भव नही है। शास्त्र मे मलमास की परिभाषा तीन प्रकार की मिलती है—भानुलंघित, क्षय और मलमास। शास्त्रों में कब मलमास होगा और किस महीने मे कौन सा मलमास होगा इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। मलमास, भानुलंघित मास और क्षय मास मे विवाहादि कार्य की मनाही है। परन्तु इनमें मुख्य कालानुष्ठेय प्रेत श्राद्ध, गर्भाधान, पुंसवनादि अन्न प्राशनात संस्कार तथा समस्त संस्कारान्त वृद्धि श्राद्ध, मघात्रयोदशी श्राद्ध, शान्ति स्वस्त्ययन, मलमास में मृत व्यक्ति वार्षिक श्राद्ध ये सब कार्य करणीय है।

वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ मास मलमास होने से प्रायः अशुभ होता है। चैत्र और वैशाख मास मध्यम हैं। बाकी मासों मे मलमास प्रायः शुभ होता है। मलमास के अवसर पर राजगृह में बड़ा मेला लगता है। पुराणों में लिखा है इस मास मे तैंतीस कोटि देवी-देवता राजगृह में उतरते है। और इस प्रकार यह स्थान सर्वश्रेष्ठ पवित्रतम तीर्थ स्थान बन जाता है।

पितृ-पक्ष

आश्विन मास का कृष्ण पक्ष कृष्णा प्रतिपदा से अमावस्या तक का समय पितृ पक्ष है। यह पक्ष पितरों का अतिशय प्रिय माना गया है। कारण, इस पक्ष में उनके निमित्त श्राद्ध आदि करने से वे अत्यन्त संतुष्ट होते हैं। प्रतिपदा से अमावस्या तक नित्य उनके हेतु तिल-तर्पण और अमावस्या को पार्वण विधि से तीन पीढ़ियों ऊपर तक के मृत पूर्वजों का श्राद्ध किया जाता है। भिन्न-भिन्न पूर्वजों की मृत्युतिथियों को भी उनके निमित्त इस पक्ष में श्राद्ध करते हैं। यह श्राद्ध एकोद्दिष्ट न होकर पुरपिक होता है। इन पन्द्रह दिनों के आहार और विहार में प्राय अशौच नियमों का भी पालन किया जाता है।

पिता जन्मदाता है—वे भरण-पोषण कर्त्ता हैं। संसार में पिता सर्वापेक्षा पूजनीय हैं। यह उन्हीं का प्रभाव है कि मनुष्य संसार के दर्शन करता है। पिता जन्मदाता होने के कारण जनक, रक्षण करने के कारण पिता और विस्तार करने के कारण तात है। उपाध्याय, ज्येष्ठ भ्राता, महीपति, मातुल, श्वसुर, रक्षक और ज्येष्ठ पितृव्य, ये सब पिता के तुल्य हैं। इन सबके साथ पिता जैसा व्यवहार रखना उचित है। पिता, माता और आचार्य ये तीनों महागुरु हैं। तन्त्रसार में लिखा है कि उत्पादक पिता की अपेक्षा मन्त्रदाता पिता अधिक श्रेष्ठ है। पंच पिता हैं। जनक, श्वसुर, उपनेता, अन्नदाता और मन्त्रदाता। सप्त पिता हैं कन्या दाता, अन्नदाता, ज्ञानदाता, अभयदाता, जन्मदाता मन्त्रदाता और ज्येष्ठ भ्राता। गरुड़ पुराण में इकतीस प्रकार के पिता निर्दिष्ट हैं।

पुत्र के पुण्य या पाप करने पर पिता भी उसके भागी होते हैं। मार्कण्डेय पुराण में पितृगण की विशद स्तुति और अत्यन्त नाम संख्या आदि का उल्लेख है।

कहा गया है कि मृत्यु और शवदाह के बाद मृत व्यक्ति को अतिवाहिक देह मिलती है। इसके उपरान्त जब उसके पुत्रादि उसके निमित्त दशगात्र का पिंडदान करते हैं, तब दस पिंडों से क्रमश: उसके शरीर के दस अंग गठित होकर उसको एक नव शरीर प्राप्त होता है। इस देह में उसकी प्रेत संज्ञा होती है। षोडश श्राद्ध और सपिंडन के द्वारा क्रमश: उसका शरीर भी छूट जाता है और वह एक नयी भोगदेह पाकर बाप, दादा और परदादा आदि के साथ पितृलोक में वास करता है अथवा कर्म संस्कारानुसार स्वर्ग नरक आदि में सुख-दुःख आदि का भोग करता है। इसी अवस्था में उसे प्रेत कहते हैं। जब तक प्रेत भाव बना रहता है मृत व्यक्ति पितृ संज्ञा पाने का अधिकारी नहीं होता। पितरों अर्थात् प्रेतत्व से छूटे हुए पूर्वजों की तृप्ति के लिए श्राद्ध तर्पण आदि कराना

पुत्रादि का कर्तव्य माना गया है। इन पितरों को अमावस्या बहुत प्रिय है और श्राद्ध आदि कार्य इसी तिथि को करने चाहिये। इसी कारण यह तिथि पितृ-तिथि के नाम से प्रसिद्ध है।

शव को विनष्ट करते समय यह प्रयत्न रहता है कि उसके कीटाणु रोग न फैला सकें और उसकी दुर्गन्ध रोग कृमियों का सृजन न करें ? यही नहीं अच्छा हो कि वह शव किसी काम में आ जाय। साथ ही प्रत्येक मनुष्य यह भी चाहता है कि मृत पुरुषों की स्मृति बनी रहे। दाह कर्म का इसीलिए विधान है। कुछ देशों में शव गाड़ा जाता है और कुछ में जलाया जाता है। कुछ देश ऐसे भी हैं जहाँ कुछ लोग शव को गाड़ते हैं तो कुछ लोग जलाते हैं। कहीं शव को आधा जलाकर गाड़ देते हैं या नदी में प्रवाहित कर देते हैं। साँप के काटे हुए अथवा हैजे से मरे हुए का शव नदी में फेंक दिया जाता है। कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि इस प्रकार का मुर्दा जी उठा है और वह वर्षों जीवित रहा।

कुछ लोग स्मृति को चिरकालीन बनाने के लिए कब्रों पर पत्थर लगा देते हैं। पक्की कब्र बनवाते हैं अथवा कब्र पर भवन तैयार कराते हैं। सारे संसार में राजाओं की स्मृति में अनेक भवन शत-शत वर्षों से खड़े हैं। इस सम्बन्ध में ताज महल का नाम अग्रणी है। तथा मिश्र के विशाल स्तूप विश्व के आश्चर्यों में हैं। साधु-संतों और नेता विद्वानों की स्मृति अजर-अमर बनाने के लिए उनकी समाधि पर भवन निर्माण प्राचीन प्रथा है। ऐसी समाधियों पर कहीं-कहीं मेले लगाये जाते हैं।

हमारे यहाँ इस स्मृति रक्षा के लिए एक दूसरा तरीका अपनाया जाता है। प्रत्येक परिवार आश्विन मास में पितृपक्ष मनाता है। प्रत्येक तिथि मास में दो बार आती है। इस प्रकार पन्द्रह तिथियों में वर्ष भर की सभी तिथियाँ आ जाती हैं। मृत्यु चाहे किसी मास में हो आश्विन मास के पितृपक्ष के दिनों में ही मृत्यु की तिथि के दिन उनकी स्मृति मनायी जाती है। पन्द्रह दिनों का हिसाब इस प्रकार हुआ और सोलहवाँ दिन पितृ विसर्जनी अमावस्या का। वह अन्तिम दिन उन मृतकों की स्मृति के लिए भी है जिनकी मृत्यु तिथि अज्ञात है। यथा शक्ति दान पुण्य में भोजन-दक्षिणा से अपने पूर्वजों की स्मृति बनायी रखी जाती है।

पितृ पक्ष में पितरों के शोक में दाढ़ी बनाना, कपड़ा सिलाना एवं कोई नया काम प्रारम्भ करना मना है। प्राचीन काल में मिट्टी के पुतलों और कागज की तस्वीरों की पूजा होती रही है। उनकी प्रशंसा में उनकी स्मृति में भजनगान, कविता लिखना-पढ़ना किंवा यशोगान करना परम्परागत है।

इस सम्बन्ध में महाभारत का एक प्रसंग है। कहा जाता है कि टेसू राय नामक एक बली राजा कुरुक्षेत्र के महायुद्ध में भाग लेने आया। वह धनुष-विद्या

में बड़ा दक्ष था। उसकी सर्वप्रथम भेंट थी कृष्ण से हुई। उनके साथ टेसूराय का समझौता हुआ। उसने युद्ध मे कोई भाग न लेने का निश्चय किया। वह अपने विशाल तीरो की तिपाई पर बैठकर महाभारत का तमाशा देखता रहा। पितृपक्ष मे बीते हुओं की याद की जाती है। तीन टाँगों पर टेसूराय की मूर्ति रखकर टेसूराय तथा अन्य महाभारतीय योद्धाओं की स्मृति को जागरूक किया जाता है।

मत्स्य पुराण मे दो सौ बाईस पितृ तीर्थों का उल्लेख है। इन तीर्थों में गया का नाम सर्वोपरि है। गया का पितृपक्ष मेला सदियो से प्रसिद्ध है। यहाँ देश के चारो कोनो से लाखों व्यक्ति पितरो की स्मृति में पिंड देने के लिए एकत्र होते हैं। इस अवसर पर पिंडदान के सिवा दीपकदान किया जाता है। पितृ पक्ष के कारण ही गया तीर्थों में अग्रणी है।

पितृपक्ष का बड़ा महत्त्व है। यह महत्त्व किन कारणो से है उनका बहुत कुछ उल्लेख किया जा चुका है। इस पक्ष में हम जहाँ पुत्र कर्त्तव्य से उऋण होते है वहाँ आने वाले जीवन को पुण्यमय और सुखमय बनाते है। ऐसा लगता है कि पितृपक्ष जीवन की शाश्वतता एवं चिरंतनता के लिए आता है।

नवरात्र

नव दिनों में समाप्त होने वाला नवरात्र व्रत वर्ष में चार बार चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ मास में होता है। यह नव दिन का हिसाब शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक का है। व्रत का उद्देश्य सर्व शक्तिशालिनी देवी की आराधना से शाश्वत सुख और चिरन्तन समृद्धि की प्राप्ति है।

नवरात्र व्रतों को कुछ विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है। वह प्रतिपदा के दिन स्नान कर कुलाचारानुसार ब्राह्मण को बुलाकर घटस्थापन और मृत्तिका की वेदी में यव वपन करता है। कुलदेवी की प्रतिमा स्थापित करता है और पूजा करता है। वह नव दिनो तक एक वक्त भोजन करता है, कुमारी भोजन कराता है, ब्राह्मण भोजन कराता है और दानबलि करता है। वह त्रिकाल पूजा करता है। कहीं दुर्गा पाठ होता है। कहीं अखण्ड दीप जलता है कहीं रामायण [illegible] पाठ होता है और कहीं रामलीला होती है।

देवी भागवत में एक उपाख्यान में एक ब्राह्मण कहता है—"यदि तुम अपनी दरिद्रता दूर करना चाहते हो तो नवरात्र व्रत का अनुष्ठान करो।" यह नवरात्र व्रत ज्ञान और मोक्षप्रद है, शत्रुनाशक है तथा सुख और सतान वृद्धिजनक है। पुराकाल मे राम ने सीता के लिए विरह से कातर हो इस व्रत का अनुष्ठान किया था, जिससे उनके सब प्रकार के दुःख दूर हो गये थे।

जनमेजय को व्यासदेव ने इस व्रत के बारे में कहा था—"यह व्रत प्रीतिपूर्वक वसंत काल मे अथवा शरत्काल मे ही कर्तव्य है। मगलकामनाकाक्षी को इन दो ऋतुओं मे ही नवरात्र व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। सब रोगों की शाति के लिए और भक्ति की प्राप्ति के लिए नवरात्र अनुष्ठान मानव का एकान्त कर्तव्य है।" प्रतिपदा तिथि को विशुद्ध स्थान पर सोलह हाथ का एक स्तम्भ और ध्वज समन्वित एक मडल प्रस्तुत करना चाहिये। देवी पूजा कुशल ब्राह्मण द्वारा हो और चंडी पाठ या देवी पाठ भी हो। कार्यारम्भ होने पर वेदी के ऊपर सिंहासन पर आयुध विशिष्ट भुज चतुष्टय सम्पन्ना या अष्ट दशभुजा मुक्ताहार आदि सर्वाभरण विभूषिता सर्वलक्षणाक्राता सिंहोपरि सस्थिता शख चक्र, गदा पद्म-धारिणी देवी की प्रतिष्ठा हो। प्रतिमाभाव में पीठपूजार्थ नवाक्षर सयुक्त मत्र और बगल में पंच पल्लव समन्वित कुभ स्थापित हो। नाना प्रकार के उपहारों से देवी पूजा विधेय है। नवरात्र व्रत में होम के लिए परिमाणानुसार कुड का निर्माण करना चाहिये। इस व्रत में कुमारी पूजा करनी चाहिये। यह पूजा विधि-पूर्वक शास्त्र-समन्वित हो। नवरात्र व्रत पृथ्वी के तमाम व्रतो मे श्रेष्ठ और विशेष फलदायक है। इस व्रत के करने से धन-धान्य संतान वृद्धि, सुख-समृद्धि, आयु-आरोग्य और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

नवरात्रि में शक्ति पूजा का महत्व है। ससार में भगवान की सबसे बड़ी शक्ति काल है। इसके भय से हवा चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र बरसता है, नदियाँ बहती है, अग्नि जलती है। इसके वश में होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि, स्थिति और सहार मे प्रवृत्त होते है। सबका अन्त करने वाला यह काल स्वयं अनन्त है, सबका जन्मदाता स्वयं अनादि है। संसार मे काल मे बढकर भगवान की कोई और शक्ति नही है।

इसी भगवान की शक्ति का स्वरूप सवत्सर है जो ३६० दिनो का होता है। इन ३६० दिनों के ४० (४०-९-३६०) नवरात्र होते है। इन ४० नवरात्रों मे दो नवरात्र एक चैत्र शुक्ल का दूसरा आश्विन शुक्ल का प्रधान है। इनमें पर-मात्मा की शक्ति जगत मूल प्रकृति महामाया की आराधना पूजा होती है। इन दोनों नवरात्रो के महत्व के और भी कारण है।

शक्ति के महत्व पर कितनी ही बातें कही जा सकती हैं। सच तो यह है कि बिना शक्ति कोई भी वस्तु क्षणभर के लिए भी नहीं ठहर सकती है। जगत में जो कोई जहाँ कहीं, सद् या असद् वस्तु है—शक्ति है। शास्त्रों में शक्ति का विशद वर्णन है। उन सबका सार यह है कि शक्ति के बिना कोई वस्तु न तो बनती है और न टिकती है। सब वस्तुओं में शक्ति विराजती है। वस्तुओं की भिन्नता में भी शक्ति की रूपता और एकता रहती है। यह शक्ति पूर्णता देने वाली है। नवरात्र में इसी भगवती शक्ति का पूजन, अर्चन, स्नान, यवबपन, कुंभस्थापन और प्रतिमा पूजन से होता है।

नवरात्र का महत्व सारे देश में है। बंगाल का दुर्गा पूजन, राजस्थान की विजयादशमी और मैसूर का दशहरा देश-विदेश में खूब ही प्रसिद्ध है। उदयपुर में इस समय तलवार की पूजा होती है। इस पूजा में स्त्रियाँ भी भाग लेती हैं। ये स्त्रियाँ इस समय (गनगोर और गंगा गौरी) भी पूजती हैं। पूना की नवरात्र पूजा भी बड़ी प्रसिद्ध है। यहाँ विशेषकर स्त्रियाँ ही पूजन कार्य में आगे रहती हैं। वे गृह देवता के समक्ष रखे अस्त्र-शस्त्र को भी पूजती हैं। दाक्षिणात्य प्रदेश में नवरात्र व्रत के व्रती ब्राह्मण ही हैं। मन्त्र पाठ होता है, देवी की षोडशोपचार पूजा होती है और स्वस्ति पाठ किया जाता है। स्वस्ति गान के बाद आरती उतारी जाती है और भोग श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

नवरात्र के अवसर पर पशुबलि दी जाती है। पशु बलिदान-प्रथा महाराष्ट्र से लेकर कन्याकुमारी तक नहीं है। यह प्रथा उत्कल से लेकर पूर्व और उत्तर भारत में प्रचलित है। इस प्रथा का विकराल रूप नेपाल और कलकत्ते में देखा जा सकता है। इस अवसर पर वैष्णव लोग राम प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर रामायण पाठ करते हैं। अनेक स्थानों पर राम-लीला होती है। काशी-नरेश की रामलीला जो अनंत चतुर्दशी से प्रारम्भ होकर आश्विन पूर्णिमा तक चलती है, सारे भारत में प्रसिद्ध है।

संप्रति नवरात्र राष्ट्रिय त्योहार बन गया है। इसमें शक्ति की आराधना होती है। यह वह शक्ति है जो जीवन और जनतंत्र की रक्षिका है। नवरात्र व्रत के व्रती अपने में नवशक्ति पाकर भारत माता और पृथ्वी माता की पूजा कर लोक-परलोक दोनों को पुण्यमय बना सकें—नवरात्र का यही संदेश है।

सूर्यग्रहण

देव-दानवों के सम्पूर्ण परिश्रम और समग्र प्रयोग से समुद्र मंथन हुआ। उस मन्थन से प्राप्त अमृत जब भगवान विष्णु मोहिनी रूप धारण कर देवों को पिलाने लगे तब छद्म देव रूपधारी राहुदानव भी देवों की पंक्ति मे बैठकर अमृत पी गया। इसकी सूचना जब सूर्य-चन्द्र ने भगवान को दी तब उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र से राहु का सिर धड़ से अलग कर दिया। फलत. अमरत्व प्राप्त शिर राहु कहलाया और धड़ केतु। भगवान ने उसे ग्रह बना दिया। यही ग्रह बैर के कारण पूर्णिमा के चन्द्रमा की ओर तथा अमावस्या में सूर्य की ओर दौड़ता है।

खगोल-विद्याविदों के मतानुसार आकाशीय तेजस्वी ज्योति की पिंडों के सामने जब कोई अप्रकाशित अपार दर्शक पदार्थ आ जाता है तब उस तेजस्वी ज्योतिष्क पिंड का प्रकाश उस अपार दर्शक पदार्थ भाग के कारण छिप जाता है और दूसरे परिवार वालों के लिए छाया बन जाती है। यह छाया उपराग या ग्रहण का रूप ग्रहण करता है।

चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है। यह अपार दर्शक है। वह अप्रकाशित पिंड है। यह सूर्य की परिक्रमा करता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा करता है। वह अंडाकार भ्रमण पथ (अक्ष) के कारण कभी पृथ्वी के पास तथा कभी दूर आ जाता है। इन दोनों के दूर या पास की दूरी कम-से-कम १००८६००० तथा अधिक-से-अधिक ४१९९८००० किलो मीटर है, होता है। अपने भ्रमण पथ पर बढ़ता हुआ चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के बीच आ जाता है और कभी-कभी बिल्कुल सीध मे आने के कारण सूर्य के प्रकाश को ढँक लेता है—मेघ की तरह—तब सूर्यग्रहण हो जाता है। और जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच पृथ्वी होती है तथा तीनों बिल्कुल सीध में होते हैं, तब चन्द्रग्रहण होता है, जो प्राय. पूर्णिमा को होता है।

ग्रहण दो प्रकार के होते हैं—खग्रास या सर्वग्रास या पूर्णग्रास तथा खंड ग्रास या अंश ग्रास या किंचित् ग्रास। पुन. सूर्य ग्रहण तीन प्रकार के होते है, यथा, खग्रास या सर्वग्रास, कंकणाकार या बलयाकार तथा खंडग्रास या अंशग्रास। इसी प्रकार चन्द्र ग्रहण दो प्रकार के सर्वग्रास या खग्रास तथा अंशग्रास या खंडग्रास होते हैं।

खगोल ज्ञान से पता चला है कि १८ वर्ष और १८ दिनों की अवधि मे ४१ सूर्यग्रहण तथा २९ तक चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। किन्तु एक वर्ष में दो सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिए। हाँ, यदि किसी वर्ष दो ही ग्रहण हुए तो दोनों ही सूर्यग्रहण

होंगे, हालांकि वर्ष भर में सात ग्रहण तक संभव हैं तथापि चार से अधिक ग्रहण बहुत कम देखे गये हैं। यों तो चन्द्र ग्रहण से अधिक सूर्यग्रहण होते हैं, किन्तु साधारणतया सूर्यग्रहण की अपेक्षा चन्द्र ग्रहण अधिक देखे जाते रहे हैं। गति और दूरी के कारण सभी ग्रहण सभी स्थानों मे एक रूप में नहीं ही देखे जाते, कभी कहीं खग्रास तो कभी कहीं अर्ध ग्रास और कभी-कभी कहीं-कहीं देखे ही नहीं जाते हैं।

सर्वग्रास-खग्रास चन्द्र ग्रहण चार घण्टों तक दिखाई पड़ते हैं, जिनमे दो घण्टों तक चन्द्र मंडल अत्यन्त काला नजर आता है। सर्वग्रास-खग्रास सूर्य ग्रहण दो घंटों तक का होता है, परन्तु पूरा सूर्य मंडल आठ-दस मिनटों तक ही घिरा रहता है और साधारणत: तो मात्र दो-तीन मिनटों तक ही गाढ़ा-काला रहता है। उस समय दिन मे रात जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

सर्वग्रास-खग्रास सूर्यग्रहण बड़ा मनोहर अति दिव्य होता है। सूर्य के पूर्ण रूप मे ढँकने के पूर्व पृथ्वी का रंग बदल जाता है। सर्वत्र आतंक हो जाता है और यत्किंचित् भय का भी संचार होता है। सारी पृथ्वी पर रात आ जाती है और सबके सब पशु-पक्षी भी विशेष स्थिति परिस्थिति का अनुभव करने लगते हैं। परन्तु आकाश की दिव्यता और भव्यता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। सूर्य के पार्श्व प्रान्त में मनोहर-मनोरम दृश्य छा जाता है। सूर्य की चारों ओर मोती के समान स्वच्छ 'मुकुटावरण' दृष्टिगोचर होता है, जिसकी तेज से आँखों में चकाचौंध होने लगती है। उसके नीचे सूर्य की लाल ज्वाला (प्रोन्मत ज्वाला) निकलती दीख पड़ती है। उसके हल्के प्रकाश से मनुष्यों के मुँह लाल वर्ण के से जान पड़ते हैं। किन्तु यह अनुभव अपूर्व-रम्य-मोहक दृश्य मात्र दो-चार मिनट ही दिखलाई पड़ता है।

भूगोल-खगोल-शास्त्र विज्ञान के प्राचीन अर्वाचीन पंडितो-वैज्ञानिकों ने अपने ज्ञान-गणना, अनुभव विचार और कल्पना-अनुमान के बल पर जो बातें कही हैं और वे जो कुछ कह रहे हैं, संक्षेप मे इस प्रकार हैं—

"सर्वग्रास-खग्रास सूर्य ग्रहण काल में काला सूर्य उदय होता है। दिनरात में बदल जाता है। धरती से आकाश तक घोर तिमिर छा जाता है। चारों ओर भय, आतंक और त्रास फैल जाते हैं। लोगों का रक्तचाप बढ़ जाता है। उनके मुखमण्डल तमतमा उठते हैं—लाल-लाल हो जाते हैं। उनका स्वभाव आक्रामक हो जाता है। उनमें दंगा-फसाद, लड़ाई-झगड़ा करने की प्रवृत्ति जाग उठती है। पशु-पक्षी चीखने-चिल्लाने लगते हैं। वे दौड़ने-भागने लगते हैं। उन्हें जान बचाने की चिन्ता होने लगती है। पेड़-पौधे पलाने लगते हैं। उनकी विकास

वृद्धि में अद्भुत असाधारणता लक्षित होती है। धरती की हरियाली पर ओस की बूँदें जा जाती है। कहीं आँधी, कहीं तूफान और कहीं चक्रवात, तो कहीं वर्षा, कहीं झडी और कहीं ओले पड़ने लगते हैं। और ऐसा लगने लगता है कि यह संसार एकबारगी ही बदल गया है।"

बहुत-बहुत दिन पहले—कितना पहले कोई पता नहीं, भारतीयों ने सर्वग्रास-खग्रास सूर्यग्रहण पर्व को बड़े महत्त्व का समझा है। इसका यह महत्त्व तब और भी बढ जाता है जब इसका सम्बन्ध कुरुक्षेत्र-धर्मक्षेत्र से जुड़ता है। इतिहास के अभिलेखों से पता चलता है कि सर्वग्रास-खग्रास सूर्यग्रहण पर्व में ही कुरुक्षेत्र मे ही ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना का प्रारम्भ किया था, ब्रह्मा अपने पाप से मुक्त हुए थे, ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व पाया तथा परशुराम ने क्षत्रिय कुल का नाश कर पितृ तर्पण किया था, महावीर हनुमान ने जन्म-ग्रहण किया था, राजा कुरु ने तप-कार्य-परिश्रम-बल से धरती को कृषि-योग्य बनाया था, राजा पृथु ने धरती का पृथिवी नामकरण किया था, कौरव-पाण्डव का महाभारत हुआ था, नारायण ने पृथ्वी का निर्माण किया था, शिव-पूजा के लिए लिंग स्थापना हुई थी, राजा बलि ने भगवान वामन को सशरीर सर्वस्व दान दिया था, अर्जुन को भगवान कृष्ण से गीता ज्ञान मिला था, वसुदेव ने यज्ञ किया था, स्वामी कार्तिक का सेनापति पद पर अभिषेक हुआ था, दधीचि ने अस्थिदान किया था, विश्वामित्र ने अपनी कुटी छवाई थी, मुद्गल मुनि ने अपना आश्रम बनाया था और राजा पुरुरवा ने अपनी खोई उर्वशी पाई थी।

परम्परा मे आने हुए सूर्यग्रहण काल के कुछ मान्य कृत्य ये हैं—विधवा, यति, वैष्णव तथा विरक्तो के लिए उपवास का विधान है। शयन-शौचादि निषिद्ध है। देव मूर्ति स्पर्श की मनाही है। स्नान-दान-जप-श्राद्ध का महत्त्व है। भजन-कीर्त्तन, कथा-पुराण, विचार-मंथन तथा ध्यान-चिंतन अनिवार्य है। हम प्रभु के हैं—हम प्रभु में हैं—हममें प्रभु है—यह विश्वास 'अवश्य' है।

भारतीय इतिहास की स्मृति में सर्वग्रास खग्रास सूर्यग्रहण १८७१, १८९८ तथा १९८० मे लगा था।

कुम्भ

कुम्भ पर्व—पुष्कर-योग अखिल भारत का—निखिल विश्व का सर्व-प्राचीन पुरा आदि कालीन समग्र पुरातन है। इसका उल्लेख वेदों और पुराणों में प्रत्यक्ष तथा प्रकारान्तर से अनेक स्थानों में प्रचुर मात्रा मे मिलता है। एतद्विषयक वेदो-पुराणो की कुछ चर्चायें इस प्रकार हैं :—

"कुम्भ पर्व में तीर्थ यात्रा करने वाला मनुष्य स्वयं अपने फल रूप से प्राप्त होने वाले सत्कर्मों दान यज्ञादि से काष्ठ काटने वाले कुल्हाड़े आदि की तरह अपने पापों का विनाश करता है। जिस प्रकार सिंधु आदि नद अपने तटों को नष्ट करते हुए प्रवाहित होते हैं उसी प्रकार कुम्भ पर्व मनुष्य के पूर्व जन्मार्जित किए हुए सत्कर्मों से उनके शारीरिक पापों को नष्ट करता है और नूतन कृत्रिम पर्वतों की भाँति बादलों से संसार सुवृष्टि करता है।" (ऋग्वेद)

कुम्भ पर्व के यज्ञों की वेदी में, यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले आयुधों से तृप्त होने के कारण अनुभव मत करो।।" (ऋग्वेद)

"कुम्भ पर्व मनुष्य के इस लोक में उसके सत्कर्मों के द्वारा अनेक प्रकार के शारीरिक सुखों को देने वाला और दूसरे लोको में पितरों का उत्तमोत्तम सुखों का देने वाला है।" (यजुर्वेद)

"सन्तगण ! यह कुम्भ पर्व समय-समय पर (बारह वर्ष के अनन्तर) आया करता है, जिसे हम विविध तीर्थों में बार-बार देखा करते हैं। कुम्भ पर्व उस समय को कहते हैं, जब आकाश मंडल में ग्रह-राशि आदि का योग सम्पन्न होता है।" (अथर्वेद)

"कुम्भ के चार भेद हैं।" (अथर्वेद)

"मकर राशि में बृहस्पति और सूर्य मिलित होने पर यदि पूर्णिमा तिथि पड़ती, तो प्रयाग और गंगाद्वार (हरिद्वार) में गंगा पुष्कर तुल्य हो जाती है। वह कोटि सूर्य ग्रहण के समान है।" (स्कन्द पुराण)

"सूर्य और बृहस्पति सिंह राशि में मिलन होने पर बृहस्पतिवार को यदि पूर्णिमा तिथि पड़ती तो गोदावरी में पुष्कर योग लगता है। इसी प्रकार कृष्णा अष्टमी तिथि को मेष राशि पर सूर्य एवं बृहस्पति के मिलित होने पर कावेरी में और श्रावण मास में बृहस्पति किंवा सोमवार को अमावस्या या पूर्णिमा के दिन कृष्ण नदी में पुष्कर योग होता है।" (स्कन्द पुराण)

कुम्भ बारह वर्षों के भीतर भारत के चार स्थानों—प्रयाग (त्रिवेणी), हरिद्वार (गंगा), नासिक (गोदावरी) तथा उज्जैन (क्षिप्रा) पर आता है। ये चारों ही स्थान हमारे अत्यन्त प्राचीन, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थल युग-युगीन महत्त्व के हैं।

कुम्भ, अर्द्ध कुम्भ तथा पूर्ण कुम्भ बारी-बारी से उपर्युक्त चारों स्थानों पर आता है। कुम्भ का आना सूर्य, चन्द्र, मकर और बृहस्पति के प्रवेश और मिलन पर निर्भर करता है। यह प्रवेश-मिलन-योग प्रायः अमावस्या और पूर्णिमा

को ही सम्भव होता है। प्रति बारहवें मे जब सूर्य और चन्द्र मेष राशि में और वृहस्पति कुंभ राशि में स्थित होते हैं तब हरिद्वार में कुम्भ पर्व होता है।

भारतीय वाङ्मय में कुम्भ पर्व की बड़ी विचित्र कथा का सन्दर्भ आता है। वह मनोहर-मनोरम कथा इस प्रकार है—"सृष्टि की आदि अनादि वेला में देव-दानव भाई-भाई थे। उन सब भाइयों ने अपनी विद्या-बुद्धि शक्ति से विश्व का कोना-कोना खोज डाला और अनेक बहुमूल्य सामग्रियाँ प्राप्त की। बच रहा समुद्र रत्नाकर। इस रत्नाकर में अपार रत्नों के साथ सर्वाधिक मूल्यवान अमृत भी था। यह अमृत वह रत्न है, जिसके पान से कोई भी अमरत्व प्राप्त कर चिर नवीन बना रहता है और जरा-मरण के दुःख से मुक्त हो शाश्वत सुखों का उपभोग सदा-सदा के लिए करता है।

उपर्युक्त अमृत और उसकी प्राप्ति की कल्पना मात्र से देव दानव विह्वल हो उठे। अमृत पाने के लिए सम्मिलित रूप से युक्तियाँ सोची जाने लगी। अन्ततः वे सभी भगवान् के पास पहुँचे और उन्होंने समुद्र मन्थन की सलाह दी। मन्थन की तैयारी होने लगी। मन्दराचल की मथानी तथा वासुकि नाग को रज्जु बनना पड़ा। निदान समुद्र मन्थन शुरू हुआ। घोर मन्थन से तीनों लोक काँप उठे। बेचारे समुद्र की दुर्दशा की कोई सीमा न थी। देव-दानव की संयुक्त शक्ति और सुबुद्धि के सम्मिलित सदुपयोग के फलस्वरूप सिद्धि सामने समुपस्थित हुई। और अन्ततः चौदह रत्नों सहित अमृत पूर्ण सुवर्ण कुम्भ देव-दानवों के समक्ष उपस्थित हुआ। उसे देखकर सबके सब उन्मत्त हो उठे। अमृत पाने के लिए वे आपस में भारी लड़ाई करने लगे। इस बीच इन्द्र सुत जयन्त अमृत-कुम्भ लेकर भाग खड़ा हुआ। जयन्त का भागना देवों की चाल थी। बेचारे दानव अपने गुरु शुक्राचार्य के पास परामर्श के लिये पहुँचे। उन्होंने दानवों को जयन्त को पकड़ने तथा उससे अमृत कुम्भ छीन लेने के लिए कहा। फिर क्या, सभी दानव जयन्त का पीछा करने लगे। इधर देवों ने जयन्त और अमृत कुम्भ को बचाने के लिये दानवों से लड़ाई शुरू कर दी। यह लड़ाई देवों के बारह दिन मानवों के बारह वर्ष तक चली। इन दिनों में इन वर्षों में चार दैत्यों ने चार स्थानों पर जयन्त को पकड़कर अमृत कुम्भ को छीनने का विफल प्रयास किया। इस विफलता में देवों के संयुक्त मोर्चे ने तथा जयन्त, सूर्य, चन्द्र और वृहस्पति के शक्ति कौशल ने अमृत कुम्भ की रक्षा में बड़ी सहायता पहुँचायी। अमृत कुम्भ की इस युद्ध-लड़ाई में—इस छीनाझपटी में अमृत-कुम्भ से जिन चार स्थानों पर अमृत-बूँदें छलकी थे हैं—प्रयाग (त्रिवेणी), हरिद्वार (गंगा), नासिक (गोदावरी) और अवन्तिका उज्जैन (क्षिप्रा)। चूँकि कुम्भ की रक्षा में जयन्त के सिवा सूर्य ने फूटने से, वृहस्पति ने लूटने से तथा चन्द्र ने छलक-

सहायता की थी, अतः कुम्भ पर्व इन तीनों सूर्य, बृहस्पति और चन्द्र देवताओं (ग्रहों) की ही मुख्य स्थिति है।

धर्म-प्राण भारत की धार्मिक सनातन जनता का यह दृढ़ विश्वास है कि उपर्युक्त जिन चार स्थानों पर अमृत कुम्भ से अमृत बूंदें छिटकी-छलकी थी; वे ही कुम्भ पर्व की पुण्य-पूज्य तीर्थ भूमि है और जब-जब प्रकृति नियम परायणता के साथ सूर्य, बृहस्पति तथा चन्द्र की मिलन स्थिति आती है इन पुण्य-पूज्यों तीर्थों में कुम्भ पर्व मनाया जाता है—मनाया जाता रहा है—मनाया जाता रहेगा। पुनीत-पावन-पवित्र कुम्भ पर्व ने जहाँ एक ओर इन पुण्य-पूज्य तीर्थों की महिमा-गरिमा बढाई है, वहाँ दूसरी ओर इन पुण्य-पूज्य तीर्थों में पुनीत-पावन-पवित्र कुम्भ पर्व को शाश्वतता चिरंतनता और अलौकिकता प्रदान की है। हमको और हमारे पूर्वजों को जिन धर्म, सभ्यता और संस्कृति का गौरव है और था उनके उन्नयन और विकास एवं उन्नति और वृद्धि इन्हीं स्थानों पर इसी कुम्भ पर्व के शुभ अवसर पर होते रहे हैं, होती रही है—होते रहेंगे। सच तो यह है कि इन्हीं स्थलों पर इसी पर्व के अवसर पर हमारे पूर्वज सम्मिलित होकर ऐहिक जीवन का लेखा-जोखा करते थे इसका अवेक्षण करते थे तथा यहीं से प्रेरणा संदेश ले अपने सामाजिक जीवन को दिशा निर्देश देते हुए इह लोक और परलोक को सुखमय और शान्तिमय बनाते थे।

यों तो प्राचीन भारतीय वाङ्मय कुम्भ पर्व की चर्चाओं से ओत-प्रोत है ही फिर भी आधुनिक अर्वाचीन साहित्य और इतिहास इस मामले में चुप नहीं है। जब सुविख्यात चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत भ्रमण कर रहा था, उसे कुम्भ पर्व पर उपस्थित होने का सौभाग्य मिला था। ह्वेनसांग लिखता है :—'कुम्भ पर्व के अवसर पर करीब अढाई लाख स्त्री-पुरुष-बाल-वृद्ध जमा हुए थे। तब हर्षवर्धन महान का साम्राज्य था। उन्होंने कुम्भ पर्व पर स्वयं उपस्थित होकर सर्वस्व दान किया था।' अंग्रेज इतिहासकारों ने प्रयाग के कुम्भ पर्व का अत्यन्त आश्चर्य-जनक वर्णन किया है। ऐसा लगता है कि युगान्तरों-कल्पांतरों से आता यह कुम्भ पर्व सृष्टि के इतिहास में अपना सानी नहीं रखता है। इस धराधाम पर कुम्भ पर्व जैसा बड़ा मेला शायद ही कहीं लगा हो—कहीं लगता हो।

कहा जाता है कि कुम्भ पर्व का वर्तमान स्वरूप कुम्भ मेला जगद्‌गुरु शंकराचार्य को तप-साधना एवं परिश्रम प्रयास का फल है। उन्होंने सातवीं-आठवीं शदी में भारत की चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की। ये मठ संन्यासियों के लिए थे, जिनका संगठन जगद्‌गुरु ने किया था। यह संगठन सनातन धर्म प्रचार-प्रसार तथा रक्षा-सुरक्षा के लिए किया गया था। आठवीं

सदी में गोसाईं राजेन्द्र गिरि ने मुख्य धार्मिक विचारों के आधार पर अपने हिन्दू धर्म पर किये जाने वाले आघातों से बचने-बचाने के लिए सबसे पहले संन्यासियों के अखाड़ों का निर्माण किया। कुम्भ मेलों के अवसरों पर ये अखाड़े बड़े संन्यासी जमा होकर धर्म तथा समाजोत्थान के विषय विभिन्न अवस्थाओं के माध्यम से करते थे। कुम्भ मेले के अवसर पर ये अखाड़े सबसे पहले पहले स्नान करने के लिए आतुर रहते हैं। अतीत में स्नान करने को लेकर भीषण लड़ाइयाँ हुई हैं। १७६० ई० में स्नान के अन्तिम दिन संन्यासियों और वैरागियों के बीच जो संघर्ष हुआ उसमें लगभग १८०० आदमी मारे गये। सन् १७९५ में सिक्ख यात्रियों ने करीब ५०० संन्यासियों का वध कर दिया था। १९५० में कुव्यवस्था के कारण में पुल टूट जाने तथा भीड़ फँस जाने के कारण कितने ही लोग मौत के मुँह में चले गये थे। किन्तु अब वह बात नहीं है। पिछले दिन कुम्भ मेले पर प्रयाग में श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रधान-मन्त्रित्वकाल में आदर्श व्यवस्था थी। स्नान, ध्यान तथा सफाई की सुव्यवस्था अनुपम थी। आशा की जाती है कि दिनानुदिन कुम्भ मेले की व्यवस्था सुन्दर-सुन्दरतर सुन्दरतम होती जायेगी।

अन्त में कुम्भ पर्व हमारे देश का सर्वमान्य सर्व पूज्य, सर्वपुण्य, सर्वकालीन, सर्व कल्याणकारी एवं सर्व प्रतिष्ठित पर्व है।